* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

श्रीकृष्णका मित्रप्रेम

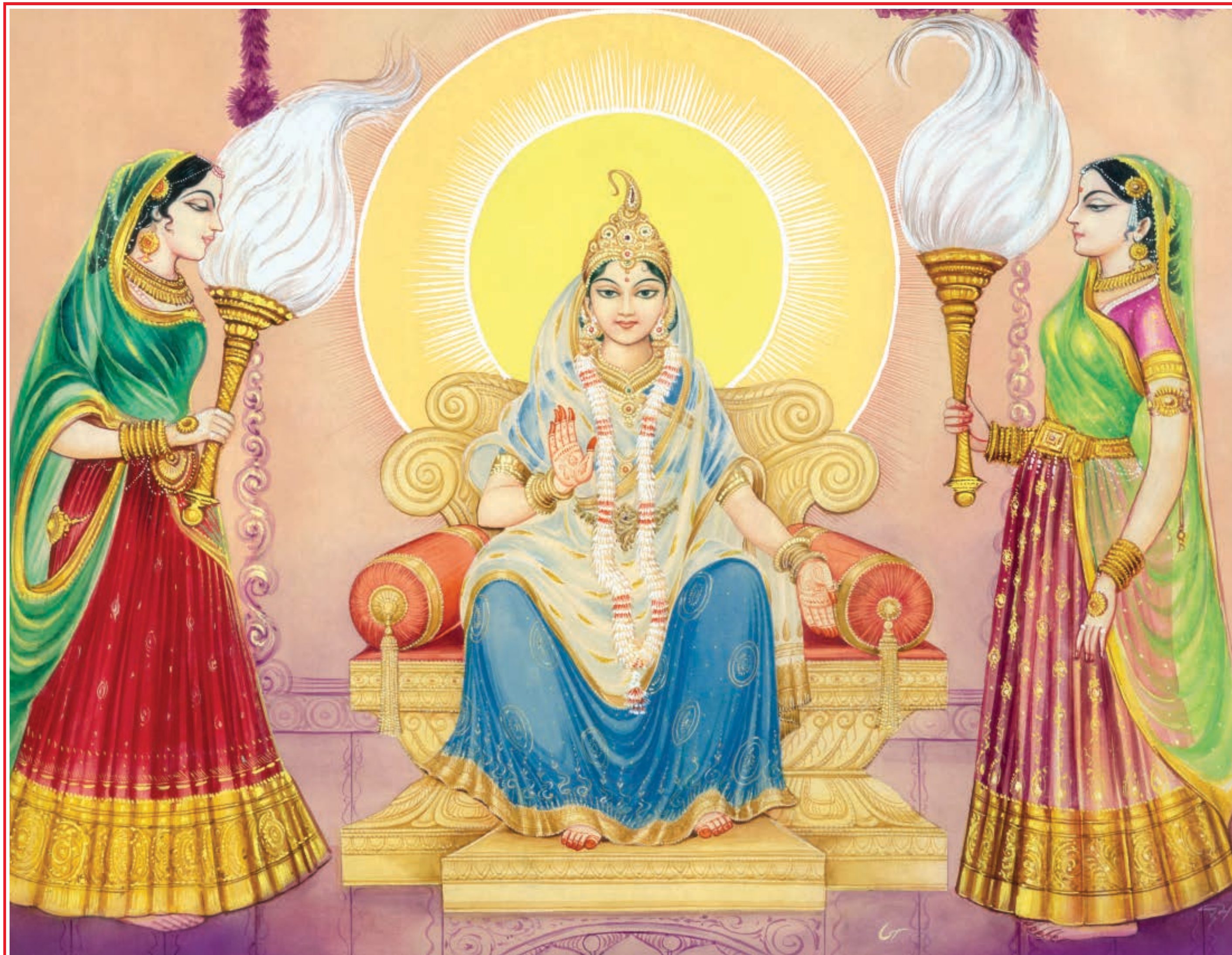

सिंहासनासीन श्रीराधाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अगस्त २०२० ई० | संख्या ८
पूर्ण संख्या ११२५

‘उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार’

जिनका शुचि सौन्दर्य-सुधा-रसनिधि नित नव बढ़ता रहता।
जिनका मधु माधुर्य माधुरी नित नव रस भरता रहता॥
नित नवीन निरुपम भावोंका जिनमें सदा उदय होता।
जिनमें अतुल तरंगें नित नव उठतीं, नहिं विराम होता॥
जिनमें अवगाहन कर कभी न होते तृप्त स्वयं भगवान।
रसमय स्वयं सदा जिनका रस करते लोलुपकी ज्यों पान॥
जिनको निज स्वरूप-सद्गुण-आनँदका कभी न होता भान।
शुचि सुन्दरता, मधुर माधुरीका होता न तनिक अभिमान॥
जो अपनेको सदा समझतीं सभी भाँतिसे दीन-मलीन।
देती रहतीं, नित्य मानतीं पर लेनेवाली अति हीन॥
ऐसी जो प्रियतमा श्यामकी, त्याग-मूर्ति, गुणवती उदार।
उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अगस्त २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार'	३
२- कल्याण	५
३- श्रीकृष्णका मित्रप्रेम **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- एक ही परमात्मा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- नाम-स्मरण (श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)	८
६- भगवान्का स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
७- अमृत-कण	११
८- **सीमापर चीनी-आक्रमणके परिप्रेक्ष्यमें—**	१२
९- सन्तोषामृत पिया करें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)	१३
१०- सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं	१५
११- संसारके वियोगमें सुख-शान्ति **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
१२- मनमें हैं, मनमोहन [कविता] (श्रीमती करुणाजी मिश्रा)	१९
१३- छान्दोग्योपनिषद् और श्रीकृष्ण (महात्मा श्रीनारायणस्वामीजी)	२०
१४- गोस्वामी तुलसीदासजीका वर्षा-वर्णन (डॉ० श्रीरोहिताश्वकुमारजी अस्थाना)	२१
१५- मानस-पूजा (सुश्री डॉ० सुनीताजी शास्त्री)	२३
१६- भगवत्कृपा—स्वरूप-चिन्तन (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	२५
१७- रामाश्वमेधकी पुण्यभूमि 'नैमिषारण्य' **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी)	२७
१८- पाप और पुण्य (श्रीअर्जुनजी पंजाबी)	३१
१९- अद्भुत सन्त शिवकोटि **[संत-चरित]** (पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलंग)	३३
२०- जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान् [कविता] (प्रो० श्रीकृष्णबिहारीजी पाण्डेय)	३४
२१- समस्या और समाधान (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	३५
२२- अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामकी महिमा	३६
२३- संकल्प-शुद्धिकी अनिवार्यता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३७
२४- सन्त स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजीकी अद्भुत गोभक्ति **[गो-चिन्तन]** (कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल)	३९
२५- **साधनोपयोगी पत्र—**	४०
(१) विश्व-कल्याण	४०
(२) बिल्वार्चनकी विधि	४१
२६- **व्रतोत्सव-पर्व** [आश्विनमासके व्रत-पर्व]	४२
२७- **कृपानुभूति**—इष्टदेव और गुरुदेवकी कृपा	४३
२८- **पढ़ो, समझो और करो**	४५
(१) होमगार्डकी सहृदयता	४५
(२) 'हित अनहित पसु पक्षिउ जाना'	४६
(३) छात्रकी ईमानदारी	४७
(४) रद्दीवालेकी ईमानदारी	४७
२९- **मनन करने योग्य**—कौटुम्बिक कलहसे हानि	४८
३०- महामारीसे मुक्त होनेका सटीक उपाय **[-राधेश्याम खेमका]**	४९

चित्र-सूची

१- श्रीकृष्णका मित्रप्रेम	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- सिंहासनासीन श्रीराधाजी	(”)	मुख-पृष्ठ
३- श्रीकृष्णका मित्रप्रेम	(इकरंगा)	६
४- सुतीक्ष्णजी रामके ध्यानमें	(”)	२३
५- श्रीअग्रदासजी	(इकरंगा)	२४
६- ध्रुवको भगवान् श्रीहरिके दर्शन	(”)	२५
७- श्रीनैमिषारण्यका चक्रतीर्थ	(”)	२७
८- आपसी कलहका दुष्परिणाम	(”)	४८

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **✆ 09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—सारे पापोंकी उत्पत्तिका कारण है—विषयकामना। आत्मा यदि जाग्रत् रहे, आत्मशक्तिकी विस्मृति न हो तो कामनाकी शक्ति नहीं कि वह आत्माको किसी प्रकारसे पराजित कर सके और पापोंकी उत्पत्ति सम्भव हो।

याद रखो—जब आत्मशक्तिको भूलकर मनुष्य रजोगुणरूपा आसक्तिसे उत्पन्न इस कामरूपी वैरीको मनमें स्थान दे देता है, तब वही पापके लिये प्रबल प्रेरणा करके पाप करवाता रहता है। मनुष्य जो पापको बुरा समझकर भी, इच्छा न रहनेपर भी पापका आचरण करता है, इसमें यह कामना ही कारण है। यही क्रोध बनता है, यही लोभ बनता है और यही मनुष्यको मोहित करके उसे कुपथगामी बना देता है।

याद रखो—यह कामना महान् पापमयी है, यह मनुष्यकी सबसे बड़ी शत्रु है। इस कामके मनमें स्थान पानेपर मनुष्यका ज्ञान वैसे ही ढक जाता है, जैसे धुएँसे आग, मलसे दर्पण या जेरसे गर्भ ढका रहता है।

याद रखो—इस कामनाका पेट कभी भरता ही नहीं, जितना ही इसे अधिक खानेको मिलेगा, उतना ही इसका पेट अधिक खाली होगा। जैसे घी-ईंधनसे आग धधकती है और अधिक फैलती है, वैसे ही विषयोंकी प्राप्तिसे कामनाकी आग अधिकाधिक बढ़ती है एवं उसका विपुल विस्तार होता है।

याद रखो—इस कामकी कभी तृप्ति होती ही नहीं। यह विवेकी पुरुषोंका तथा सन्मार्गपर चलना चाहनेवालोंका सदाका वैरी है। इसने बुद्धिपर, मनपर और इन्द्रियोंपर अपना प्रभुत्व जमा रखा है, उनको अपने इशारेपर चलाता है और उन सबके अन्दर नित्य डेरा डाले पड़ा रहता है।

याद रखो—यह काम ज्ञान-विज्ञानका नाश करनेवाला है। यह इन्द्रियोंमें, मनमें और बुद्धिमें रहता है और उन्हींके द्वारा जीवको मोहजालमें फँसाये रखता है। इसलिये पहले इन्द्रियोंको तथा मनको वशमें करना पड़ेगा। इन्द्रिय तथा मन यदि कामके प्रभावसे मुक्त हो जायँगे, वे यदि इसे अपने अन्दरसे निकाल देंगे तो फिर इसको कहीं भी रहनेकी ठौर नहीं मिलेगी।

याद रखो—इन्द्रियोंको तथा मनको वशमें करना तुम्हारे लिये कुछ भी बड़ी बात नहीं है। तुमने अपनेको दुर्बल और इन्द्रिय-मनको प्रबल मान रखा है। तुम्हारी यह कल्पित कमजोरी ही तुम्हें सशंकित रखती है। तुम यदि अपने आत्मस्वरूपका स्मरण करो तो देखोगे कि तुम्हारी अजेय शक्ति है। तुम्हारी शक्तिके सामने इन सभीकी शक्ति तुच्छ और नगण्य है। इतना ही नहीं, इनमें जो शक्ति दीखती है, वह तुम्हारी ही शक्तिके स्रोतसे आती है।

याद रखो—जहाँ इन्द्रियोंपर और मनपर तुम्हारा प्रभुत्व हुआ (प्रभुत्व तो अब भी है, पर अभी तुम अपने स्वरूपको भूलकर अपनेपर उनका प्रभुत्व मान रहे हो), वहीं इनमें रहनेवाले ये काम-क्रोध अपनेको असहाय पाकर भागने लगेंगे।

याद रखो—तुम सर्वशक्तिमान् आत्मा हो, तुममें बड़ा बल है। संसारकी किसी भी पाप-तापकी, किसी भी काम-क्रोधकी शक्ति नहीं, जो तुम्हारे शुद्धस्वरूपका स्पर्श भी कर सके या जो तुम्हारे सामने ठहर सके। तुम निश्चय करो कि 'मैं अपने आत्मस्वरूपको पहचान गया हूँ, उसमें स्थित हो गया हूँ, मैं सर्वथा निष्पाप, शुद्ध और शक्तिमान् हूँ, अबसे काम-क्रोध मेरे समीप कभी नहीं आ सकेंगे, पास आते ही वे भस्म हो जायँगे।' और जब काम-क्रोध ही जल जायँगे, तब पाप-ताप तो रहेंगे ही कहाँसे; क्योंकि पाप-तापके कारण तो काम-क्रोध आदि ही हैं।

निश्चय करो—मैं शरीर नहीं, बुद्धि नहीं, मन नहीं, इन्द्रिय नहीं। मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध निर्विकार आत्मा हूँ। मैं अजेय हूँ, शाश्वत हूँ, अमृत हूँ, एकरस हूँ, कूटस्थ हूँ, ध्रुव हूँ, अचल हूँ और हूँ नित्य सत्य परम आनन्दमय। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

श्रीकृष्णका मित्रप्रेम

भगवान् श्रीकृष्ण जब महर्षि सान्दीपनिके यहाँ शिक्षा प्राप्त करनेके लिये गये, तब सुदामाजी भी वहीं पढ़ते थे। वहाँ भगवान् श्रीकृष्णसे सुदामाजीकी गहरी मित्रता हो गयी। भगवान् श्रीकृष्ण तो बहुत थोड़े दिनोंमें अपनी शिक्षा पूर्ण करके चले गये। सुदामाजीकी जब शिक्षा पूर्ण हुई, तब गुरुदेवकी आज्ञा लेकर वे भी अपनी जन्मभूमिको लौट गये और विवाह करके गृहस्थाश्रममें रहने लगे। दरिद्रता तो जैसे सुदामाजीकी चिरसंगिनी ही थी। एक टूटी झोपड़ी, दो-चार पात्र और लज्जा ढकनेके लिये कुछ मैले और चिथड़े वस्त्र—सुदामाजीकी इतनी ही गृहस्थी थी। जन्मसे सन्तोषी सुदामाजी किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। जो कुछ बिना माँगे मिल जाय, उसीको भगवान्‌को अर्पण करके उसीपर अपना तथा पत्नीका जीवन-निर्वाह करते थे। प्राय: पति-पत्नीको उपवास ही करना पड़ता था।

सुदामाजी प्राय: नित्य ही भगवान् श्रीकृष्णकी उदारता और उनसे मित्रताकी पत्नीसे चर्चा किया करते थे। एक दिन डरते-डरते सुदामाकी पत्नीने उनसे कहा—'स्वामी! ब्राह्मणोंके परम भक्त साक्षात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र आपके मित्र हैं। आप एक बार उनके पास जायँ। आप दरिद्रताके कारण अपार कष्ट पा रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आपको अवश्य ही प्रचुर धन देंगे।'

ब्राह्मणीके आग्रहको स्वीकारकर श्रीकृष्णदर्शनकी लालसा मनमें सँजोये हुए सुदामाजी कई दिनोंकी यात्रा करके द्वारका पहुँचे। चिथड़े लपेटे कंगाल ब्राह्मणको देखकर द्वारपालको आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण जानकर उसने सुदामाको प्रणाम किया। जब सुदामाने अपने-आपको भगवान्‌का मित्र बतलाया, तब वह आश्चर्यचकित रह गया। नियमानुसार सुदामाको द्वारपर ठहराकर वह भीतर आदेश लेने गया और प्रभुको साष्टांग प्रणाम करके बोला—'प्रभो! चिथड़े लपेटे द्वारपर एक अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण खड़ा है। वह अपनेको प्रभुका मित्र कहता है और अपना नाम सुदामा बतलाता है।' 'सुदामा' शब्द सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णने जैसे अपनी सुध-बुध खो दी और नंगे पाँव दौड़ पड़े द्वारकी ओर। दोनों बाँहें फैलाकर उन्होंने सुदामाको हृदयसे लगा लिया। भगवान्‌की दीनवत्सलता देखकर सुदामाकी आँखें बरस पड़ीं। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण सुदामाको अपने महलमें ले गये। उन्होंने बचपनके प्रिय सखाको अपने पलंगपर बैठाकर उनके चरण धोये, भोजनोपरान्त भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए सुदामाजीसे पूछा—'भाई! आप मेरे लिये क्या भेंट लाये हैं?' अतुल ऐश्वर्यके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके द्वारा प्रदत्त शुष्क चिउरे देनेमें सुदामा संकोच कर रहे थे। भगवान्‌ने कहा—'मित्र! आप मुझसे जरूर कुछ छिपा रहे हो' ऐसा कहते हुए उन्होंने सुदामाकी पोटली खींच ली और एक मुट्ठी चिउरे मुखमें डालते हुए भगवान्‌ने उससे सम्पूर्ण विश्वको तृप्त कर दिया। अब सुदामाजी साधारण गरीब ब्राह्मण नहीं रहे। उनके अनजानमें ही भगवान्‌ने उन्हें अतुल ऐश्वर्यका स्वामी बना दिया। घर वापस लौटनेपर देवदुर्लभ सम्पत्ति सुदामाकी प्रतीक्षामें तैयार मिली, किंतु सुदामाजी ऐश्वर्य पाकर भी अनासक्त मनसे भगवान्‌के भजनमें लगे रहे। करुणासिन्धुके दीनसखा सुदामा ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए।

एक ही परमात्मा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

निराकार ब्रह्म भक्तोंके प्रेमवश उनके उद्धारार्थ साकाररूपसे प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। उनके साकार रूपोंका वर्णन मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है; क्योंकि वे अनन्त हैं। भक्त जिस रूपसे उन्हें देखना चाहता है, वे उसी रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। भगवान्‌का साकार रूप धारण करना भगवान्‌के अधीन नहीं, प्रेमी भक्तोंके अधीन है। अर्जुनने पहले विश्वरूप-दर्शनकी इच्छा प्रकट की, फिर चतुर्भुजकी और तदनन्तर द्विभुजकी। भक्तभावन भगवान् कृष्णने अर्जुनको उसके इच्छानुसार थोड़ी ही देरमें तीनों रूपोंसे दर्शन दे दिये और उसे निराकारका भाव भी भलीभाँति समझा दिया। इसी प्रकार जो भक्त परमात्माके जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसको उसी रूपके दर्शन हो सकते हैं।

अतएव उपासनाके स्वरूपमें परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, नृसिंह, देवी, गणेश आदि किसी भी रूपकी उपासना की जाय, सब उसीकी होती है। भजनमें कुछ भी बदलनेकी जरूरत नहीं है। बदलनेकी जरूरत यदि है, तो परमात्मामें अल्पत्व-बुद्धिकी। भक्तको चाहिये वह अपने इष्टदेवकी उपासना करता हुआ सदा समझता रहे कि मैं जिस परमात्माकी उपासना करता हूँ, वे ही परमेश्वर निराकार रूपसे चराचरमें व्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, सब कुछ उन्हींकी दृष्टिमें हो रहा है। वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वसाक्षी, सत्-चित-आनन्दघन मेरे इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये उनके इच्छानुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप धारणकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

श्रीविष्णुपुराणमें श्रीविष्णुको ही सर्वोपरि बतलाया गया है और कहा गया है कि 'संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय श्रीविष्णुसे ही होते हैं; वे ही साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं; वे ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी और सर्वश्रेष्ठ हैं; उनसे बढ़कर और कोई नहीं है।' इसी प्रकार शिवपुराणमें श्रीशिवको, देवीभागवतमें श्रीदेवीको, गणेशपुराणमें श्रीगणेशको तथा सौरपुराणमें श्रीसूर्यको ही सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, पूर्णब्रह्म परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार अन्य सब पुराणोंमें भी वर्णन आता है। इससे एक-दूसरेमें परस्पर विरोध, एक-दूसरेकी अपेक्षा परस्पर श्रेष्ठता तथा उसकी महिमाकी अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। इसका भाव यह है कि जैसे सती-शिरोमणि पार्वतीके लिये केवल एक श्रीशिव ही सर्वोपरि हैं, उनसे बढ़कर और कोई नहीं; और भगवती लक्ष्मीके लिये केवल एक श्रीविष्णु ही सबसे बढ़कर हैं, इसी तरह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्माको लक्ष्यमें रखकर सभी उपासकोंको परमात्माकी शीघ्र प्राप्ति हो जाय, इसी दृष्टिसे महर्षि वेदव्यासजीने एक-एक देवताको प्रधानता देकर तत्तत्पुराणोंकी रचना की है। प्रत्येक पुराणके अधिष्ठाता देवताके नाम-रूप परमात्माके ही नाम-रूप हैं—यह भलीभाँति समझ लेनेपर उपर्युक्त शंका रह नहीं सकती। किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, उस उपासकको पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप सर्वोपरि फल मिलना चाहिये—यह पुराण-रचयिताका उद्देश्य बहुत ही उत्तम और तात्त्विक है। प्रत्येक पुराणमें उसमें प्रतिपाद्य स्वरूपको सर्वोपरि बतलानेका प्रयोजन दूसरेकी निन्दासे नहीं है, किंतु उसकी प्रशंसामें है और उसकी प्रशंसा उस उपासककी उस पुराण और देवतामें ब्रह्मपूर्वक एकनिष्ठ भक्ति करानेके उद्देश्यसे ही है और वह उचित भी है। इस प्रकार होनेसे ही साधकका अनुष्ठान सांगोपांग पूर्ण होकर उसे पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

जितने भी पुराण-उपपुराण हैं, उनके अधिष्ठाता देवताका नाम और रूप (आकृति) भिन्न होते हुए भी उनका लक्ष्य एक पूर्णब्रह्म परमात्माकी ओर रखा गया है; क्योंकि गुण, प्रभाव, लक्षण, महिमा और स्तुति-

प्रार्थनाका वर्णन करते हुए प्रत्येक देवताको ब्रह्मका रूप दिया गया है। इसीलिये एक-दूसरे देवताकी स्तुति परस्पर प्रायः मिलती-जुलती आती है, जो पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही घटती है। पुराणोंमें जो पुराणोंके अधिष्ठातृ-देवताकी प्रशंसा एवं स्तुति की गयी है, वह अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि परमात्माकी महिमा अतिशय, अपार और अपरिमित होनेसे उस अधिष्ठातृ-देवताको परमात्माका रूप देनेपर जितनी भी उसकी महिमा बतलायी जाय, वह अल्प ही है। वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह परिमित ही है। अतएव वास्तवमें वाणीद्वारा परमात्माकी महिमाका कोई किसी प्रकार भी वर्णन नहीं कर सकता।

आशय यह है कि जो भक्त जिस देवताकी उपासना करता है, उस उपासकको अपने उपास्यदेवको सर्वोपरि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा मानकर उपासना करनी चाहिये। इस प्रकारकी दृष्टि रखकर उपासना करनेसे ही सर्वोपरि सच्चिदानन्दघन पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि सभी नाम और रूप परमात्माके ही होनेसे वह उपासना परमात्माकी ही उपासना है। अतः परमात्माको लक्ष्य करके किसी भी नाम और रूपकी उपासना की जाय, उसका फल एक पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी ही प्राप्ति होती है। इसलिये मनुष्यको अपने इष्टदेवको पूर्ण ब्रह्म परमात्मा समझकर उसके नामका जप और स्वरूपका ध्यान नित्य निरन्तर करना चाहिये।

नाम-स्मरण

(श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

नामका त्रिकालमें बाधारहित श्रेष्ठत्व

नाम सच्चिदानन्दस्वरूप है। शुद्ध परमात्मस्वरूपके बिलकुल निकट यदि कुछ है तो वह नाम ही है। नाम चिन्मय है, उसके आनन्दमें तूफान आता है और यह सृष्टि उत्पन्न होती है। अनेक रूप गढ़ना, उन्हें तोड़ना और नये बनाना, फिर भी स्वयं अपने रूपमें स्थायी रहना—यह कितनी विलक्षण लीला है। सचमुच मैं तुमसे क्या कहूँ? जबसे मैंने बोलना सीखा, तबसे आजतक नामके बारेमें ही बोल रहा हूँ, किंतु अभी भी नामका माहात्म्य समाप्त नहीं हुआ है। नामका माहात्म्य यदि कहते-कहते समाप्त हो जायगा तो समझना होगा कि भगवान्की भगवत् सत्ता ही मिथ्या है। जो नाममें अपने अहंको मिटा पाया, वही नामका माहात्म्य समझ पाया। ऐसा पुरुष नामके बारेमें मूक रहेगा; क्योंकि नामका माहात्म्य कोई कह नहीं सकता या अन्तिम श्वासतक नामका माहात्म्य कहता ही रहेगा; क्योंकि उसके बारेमें कितना ही कहते रहो, वह समाप्त नहीं होता, और कितना ही सुनते रहो, तृप्ति नहीं होती। नामस्मरणसे सब पाप नष्ट होते हैं, भगवान्को भूलना सबसे बड़ा पाप है। नामसे भगवान्का स्मरण होता है।

नाम वेदोंकी अपेक्षा भी उपादेय है। क्यों है? जरा सोचें, वेदोंसे लाभ होनेके लिये चारों वेदोंका अध्ययन करना होगा। इसके लिये बहुत श्रम और बहुत समय लगेगा। नाम-स्मरणके लिये श्रम नहीं करना पड़ता। और दूसरी एक बात है, वेदाध्ययन करनेका अधिकार सबको नहीं है। लेकिन नाम-स्मरण तो कोई भी कर सकता है। वेदोंके मन्त्रोंका आरम्भ ॐकारसे ही होता है। अतः वेदोंका आरम्भ भी नामसे ही है। नाम तीर्थयात्राकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। अन्तरंगमें परिवर्तनके लिये तीर्थयात्रा करनी पड़ती है। उसके लिये श्रम, पैसा, स्वास्थ्य आदिकी अनुकूलता चाहिये। नाम अनायास अन्तरंगमें परिवर्तन करा देता है। पंढरपुर जाकर यदि कोई नाम-स्मरण करना नहीं सीखता है तो वहाँ जाना ही व्यर्थ है। नाम लेनेकी प्रेरणा प्राप्त होनेके लिये ही वहाँ जाना जरूरी है। नाम समस्त सत्कर्मोंका राजा है। सत् यानी भगवान्।

उसके पास पहुँचानेके लिये जो कर्म है, वही सत्कर्म है। अन्य कई साधन भगवान्‌के समीप टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे ले जाते हैं, नाम तो सीधे भगवान्‌के पास पहुँचा देता है। नामसे भवरोग नष्ट होता है। भव यानी विषय। विषयोंके प्रति आसक्ति होना सब रोगोंकी जड़ है। नाम लेनेसे भगवान्‌के प्रति प्रेमभावना निर्माण होती है। अन्य विषयोंकी आसक्ति अपने-आप छूट जाती है। अतः दुःख नष्ट होता है। सिवाय इसके भगवान् आनन्दरूप हैं। उसे नाम-स्मरणकी रस्सीसे मजबूतीसे पकड़कर रखेंगे तो दुःख वहाँ कैसे रह पायेगा?

जिसे आनन्द चाहिये, वह नाम-स्मरण करे

शरीर-स्वास्थ्यके लिये, शरीरके लिये आवश्यक द्रव्योंमें जब कम-अधिक मात्रा होती है, तब शरीर-स्वास्थ्य बिगड़ता है। उसीको बीमारी कहते हैं। सोंठ एक ऐसी दवा है कि वह शरीरमें कम हुए द्रव्यकी पूर्ति कर देती है और अधिक हुए द्रव्यको घटाकर स्वास्थ्य ठीक कर देती है। नाम-स्मरण सोंठकी तरह है। पारमार्थिक प्रगतिके मार्गमें प्रत्येक व्यक्तिके जिन-जिन गुण-दोषोंके कारण रुकावट आती है, वे सब गुण-दोष दूर करके उसकी प्रगतिका मार्ग भगवान्‌का नाम खोल देता है। अतः किसीमें कोई भी गुण-दोष क्यों न हो, यदि वह निष्ठासे नामस्मरण करता है तो उसका काम पूरा होता है और वह अपने ध्येयतक पहुँच जाता है। हम लोगोंमें नन्दादीप जलानेकी प्रथा है। नन्दादीप तेलका दीपक होता है। उसकी विशेषता यह होती है कि उसे अखण्ड जलते रहना पड़ता है, इसलिये उसमें निरन्तर तेलकी पूर्ति करनी पड़ती है। वैसे ही जो आनन्द चाहता है, वह निरन्तर नाम-स्मरण करे। आनन्दका उद्‌गम ही नाममें है। कहीं भी, कभी भी स्पर्श करके देखिये बरफ ठंडी ही लगेगी। उसी तरह परमात्माके पास आनन्द होगा ही। हम गृहस्थीको विशाल करते हैं, क्यों? आनन्दप्राप्तिके लिये ही। किंतु भगवान्‌के आधारके बिना होनेवाला आनन्द कुछ कारणोंसे ही होता है। वे कारण मिट जाते हैं तो आनन्द भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ऐसा आनन्द अशाश्वत होता है। 'खायें, पीयें और मौज उड़ायें' यह सिद्धान्त मुझे कुछ सीमातक पसन्द है। किंतु उसमें एक बड़ा दोष है। दोष यह है कि यह देहशुद्धिपर आधारित है। अतः वह हमेशाके लिये टिक नहीं सकता; क्योंकि जो स्थिति आज है, वह कल नहीं होगी और वह यदि बिगड़ गयी तो इसका मजा ही किरकिरा हो जायगा। हमें तो यह हिम्मत करनी चाहिये कि जो भी परिस्थिति निर्मित होगी, उसमें हमें आनन्दका निर्माण करना चाहिये। चाहे केवल पाँच मिनट क्यों न हो, लेकिन भगवान्‌से एकरूप होनेको सीखना चाहिये। उस पाँच मिनटका आनन्द इतना होगा, जो आपको सौ साल जीकर भी नहीं मिलेगा। शक्करकी मिठासके बारेमें घंटों व्याख्यान देनेके बजाय एक चम्मच शक्कर मुँहमें डालनेसे जैसे सच्चा आनन्द मिलता है, वही बात यहाँ है। यह बात सही है कि जीनेमें आनन्द है, किंतु जीवनमें आनन्द न हो तो वह जीना मृतकके समान है। जिसके पास भगवान् है, उसी को जीनेमें आनन्द प्राप्त होगा। अतः जो जीना चाहता है, उसे नामस्मरण करना चाहिये।

'सदा सब समय तुम्हारा अखण्ड योग बना रहे' ऐसा समर्थ रामदास स्वामीने माँगा और 'मुझे तुम्हारा विस्मरण न हो' ऐसा वर सन्त तुकाराम महाराजने माँगा। इसका यही कारण है कि जहाँ भगवान् होते हैं, वहाँ आनन्द होता है। व्यापारी लोग 'आज नकद कल उधार' की तख्ती लगाते हैं। ऐसे ही 'आनन्द नकद, दुःख उधार'-की वृत्ति हम रखें। जिसकी नाम-स्मरणमें प्रसन्नता बनी रहती है, उसे मानो नित्य दीपावली ही है।

[संग्राहक—श्रीगोविन्द सीतारामजी गोखले]

भगवान्‌का स्वरूप

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है, इस बातको तो वे ही जानते हैं, परंतु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् अनेक रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होनेपर भी यथार्थमें एक ही हैं; भगवान् या सत्य कदापि दो नहीं हो सकते। भगवान्‌के अनन्त रूप, अनन्त नाम और अनन्त लीलाएँ हैं। वे भिन्न-भिन्न स्थलों और अवसरोंपर भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे अपनेको प्रकाशित करते हैं। भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌के भिन्न-भिन्न स्वरूपोंकी उपासना करते हैं और अपने इष्टरूपमें ही उनके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ होते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि एक भक्तका उपास्य-स्वरूप दूसरे भक्तके उपास्य-स्वरूपसे पृथक् होनेके कारण दोनों स्वरूपोंकी मूल एकतामें कोई भेद है। वे ही ब्रह्म हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही सच्चिदानन्द हैं, वे ही माँ जगज्जननी हैं, वे ही सूर्य हैं और वे ही गणेश हैं।

जो भक्त इस तत्त्वको जानता है, वह अपने इष्टरूपकी उपासनामें अनन्यभावसे संलग्न रहता हुआ भी अन्यान्य सभी भगवत्-स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके रूप मानता है; इसलिये वह किसीका भी विरोध नहीं करता। वह अनन्य श्रीकृष्णोपासक होकर भी मानता है कि 'मेरे ही मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान् कहीं श्रीराम-स्वरूपमें, कहीं शिव-स्वरूपमें, कहीं गणेश-स्वरूपमें, कहीं माँ कालीके स्वरूपमें और कहीं निर्लेप निराकार ब्रह्मरूपमें उपासित होते हैं; मेरे ही श्यामसुन्दर अव्यक्तरूपसे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें नित्य एकरस व्याप्त हैं; वे ही मेरे नन्दनन्दन त्रिकालातीत, भूमा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं, वे ही मेरे पुरुषोत्तम आत्मरूपसे समस्त जीव-शरीरोंमें स्थित रहकर उनका जीवत्व सिद्ध कर रहे हैं; वे ही समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर सन्त-भक्तोंको सुख देते और धर्मकी स्थापना करते हैं और वे ही जगत्‌के पृथक्-पृथक् उपासक-समुदायोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूप-गुण-भावसम्पन्न होकर उनकी पूजा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक परमाणुमें उन्हींका नित्य निवास है।'

इसी प्रकार अनन्य श्रीरामोपासक, अनन्य शिवोपासक और श्रीगणेशोपासकोंको भी—सबको अपने ही प्रभुका स्वरूप, विस्तार और ऐश्वर्य समझना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेके उपास्य इष्टदेवको अपने प्रभुसे भिन्न मानता है, वह प्रकारान्तरसे अपने ही भगवान्‌को छोटा बनाकर उनका अपमान करता है। वह असीमको ससीम, अनन्तको स्वल्प, व्यापकको एकदेशी और विश्वपूज्यको क्षुद्रसम्प्रदायपूज्य बनाता है। केवल हिन्दुओंके ही नहीं, समस्त विश्वकी विभिन्न जातियोंके पूज्य परमात्मदेव यथार्थमें एक ही सत्य तत्त्व हैं। ये सारे भेद तो देश, काल, पात्र, रुचि, परिस्थिति आदिके भेदसे हैं, जो भगवत्कृपासे भगवान्‌की प्राप्ति होनेके बाद आप ही मिट जाते हैं; अतएव अपने इष्टस्वरूपका अनन्य उपासक रहते हुए ही वस्तुगत भेदको भुलाकर सबमें, सर्वत्र, सब समय परमात्माके दर्शन करने चाहिये। यह समस्त चराचर विश्व उन्हीं भगवान्‌का शरीर है, उन्हींका स्वरूप है—यह मानकर कर्तव्य-बोधसे जीवमात्रकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करना चाहिये। सम्प्रदायभेदके कारण एक-दूसरेके उपास्यदेवकी निन्दा करना अपराध है।

अतएव सारे भेदमूलक विरोधी द्वेष-भावोंको त्यागकर अपनी-अपनी भावना और मान्यताके अनुसार भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। उपासना करते-करते जब भगवान्‌की कृपाका अनुभव होगा, तब उनके यथार्थ स्वरूपका अनुभव आप ही हो जायगा। भगवान्‌का वह रूप कल्पनातीत है। मनुष्यकी बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं पाती। निराकार या साकार भगवान्‌के जिन-जिन स्वरूपोंका वाणीसे वर्णन या मनसे मनन किया जाता है, वे सब शाखाचन्द्रन्यायसे भगवान्‌का लक्ष्य करानेवाले हैं; यथार्थ नहीं। भगवान्‌का स्वरूप तो सर्वथा अनिर्वचनीय है। इन स्वरूपोंकी वास्तविक निष्काम उपासनासे एक दिन अवश्य ही भगवत्कृपासे यथार्थ स्वरूपकी उपलब्धिकर भक्त-जीवन धन्य और कृतार्थ हो जायगा। फिर भेदकी

सारी गाँठें अपने आप ही पटापट टूट जायँगी। परंतु इस लक्ष्यके साधकको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये। कहीं विश्वव्यापी भगवान्‌को अल्प बनाकर हम उनकी तामसी पूजा करनेवाले न बन जायँ; कहीं असीमको सीमाबद्धकर हम उनका तिरस्कार न कर बैठें। भगवान् महान्-से-महान् और अणु-से-अणु हैं; त्रिकालमें नित्य स्थित और त्रिकालातीत हैं; तीनों लोकोंमें व्याप्त और तीनोंसे परे हैं। सब कुछ उनमें है और वे सबमें हैं। बस, वे ही वे हैं; उनकी महिमा उन्हींको ज्ञात है; उनका ज्ञान उन्हींको है, उनका स्वरूपभेद उन्हींमें है।

हमारा कर्तव्य तो विनम्र-भावसे सदा-सर्वदा उनके चरणोंमें पड़े रहकर उनके कृपा-कटाक्षकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे निहारते रहना ही है। जब वे कृपा करके अपना स्वरूप प्रकट करेंगे, तभी हम उन्हें जान सकेंगे। इसके सिवा उन्हें जाननेका हमारे लिये और कोई भी सहज उपाय नहीं है। परंतु इसके लिये हमें कुछ तैयारी करनी होगी; मनका मैल दूर करना होगा, सारे जगत्‌में उनका दीदार देखना होगा; सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें उनकी छायाका प्रत्यक्ष करना पड़ेगा। जगत्‌में कौन ऐसा है, जिसका किसी प्रकारसे भी उन्हें स्वीकार किये बिना छुटकारा हो सके। भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आनेवाली नाना नदियाँ एक ही समुद्रकी ओर दौड़ती हैं। इसी तरह सभीको सुखस्वरूप भगवान्‌की ओर दौड़ना पड़ता है। नास्तिकको भी किसी-न-किसी प्रकारसे उनकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? इसलिये सबमें उन्हें देखनेकी कोशिश करनी चाहिये।

अमृत-कण

'नारायण' का स्मरण मंगलमय है

'नारायण' शब्द प्रभुका बड़ा मंगलमय नाम है। श्रीमालवीयजी महाराज कहा करते थे कि 'नारायण' शब्दका उच्चारण करते हुए यात्रा आरम्भ करनेसे यात्रा सफल हो जाया करती है, विघ्न मिट जाते हैं। दूसरा कोई प्रणाम करे या चरणस्पर्श करे तो उसे भगवान् नारायणका स्वरूप समझकर नारायणकी भावनासे 'नारायण' शब्दका उच्चारण करते हुए मन-ही-मन प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करना बहुत अच्छा है। आप श्रीनारायणके चरणोंकी स्मृति बनाये रखनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं, सो आपकी यह प्रार्थना अवश्य ही बड़ी मंगलमयी है। भगवान् सच्ची प्रार्थना सफल करते ही हैं।

सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धसे मिलता है

मनुष्यका अपना स्वभाव होता है और वह प्रत्येक वस्तुको अपनी आँखसे देखता है। जहाँतक बने, चेष्टा ऐसी रखनी चाहिये कि जिसके साथ काम कर रहे हैं, उसका अधिक-से-अधिक आदेश पालन करें और उसके अनुकूल चलें। जहाँपर पाप स्वीकार करना पड़ता हो, वहाँपर उतने अंशमें उनका समर्थन न करके अन्य चीजोंका तो समर्थन करना ही चाहिये। यही नीति है। रही दोषकी बात, सो भगवान्‌के सामने मनुष्यको सदा सच्चा रहना चाहिये। सांसारिक हानि-लाभ पूर्व-जन्मार्जित कर्मोंके अनुसार बने हुए प्रारब्धसे मिलते हैं। उसे बदलना बहुत कठिन है; न तो हम स्वयं उचित-अनुचित बर्ताव करके उसे बदल सकते हैं, न दूसरे ही हमारे साथ न्यास-अन्यायका बर्ताव करके बदल सकते हैं। दूसरोंके द्वारा अपना अहित होता देखकर तो यह समझना चाहिये कि व्यक्ति केवल निमित्त है, मेरा अहित मेरे कर्मवश हुआ है; पर मेरा अहित चाहकर उसने अपना अहित कर लिया है, भगवान् उसे क्षमा करें। और अपने मनमें कभी किसीके अहित करनेकी कल्पना आये तो यह सोचना चाहिये कि उसके प्रारब्धके बिना उसका अहित करना मेरे लिये असम्भव है, परंतु उसका अहित सोचकर मैं अपना अहित अवश्य कर रहा हूँ। अतएव अपने अहितसे बचना चाहिये। [परमार्थकी पगडण्डियाँ]

सीमापर चीनी-आक्रमणके परिप्रेक्ष्यमें—

*[निम्नलिखित दो पदोंकी रचना सन् १९६२ ई० में चीनद्वारा देशपर हुए आक्रमणके समय देशवासियोंके प्रबोधके लिये कल्याणके आदि सम्पादक नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीद्वारा की गयी थी। प्रथम पदमें देशवासियोंको ओजस्वी भाषामें उद्‌बोधित किया गया है, जबकि दूसरे पदमें परमात्मप्रभुसे संकट-निवारणहेतु प्रार्थना की गयी है और कल्याणके पाठकोंसे भी इसे करनेको कहा गया है। आज पुनः सीमापर वैसी ही परिस्थितियाँ बन गयी हैं, ऐसेमें ये पद पुनः प्रासंगिक हो गये हैं, अतः इनको फिरसे प्रकाशित किया जा रहा है—**सम्पादक**]*

(१) चीन-दमनकी साधना और सिद्धि

एक ब्रह्म है व्यापक सबमें सभी ब्रह्मका है विस्तार।
विश्व-चराचरका है केवल सच्चिन्मय वह ही आधार॥
शत्रु-मित्र, पर-बन्धु न कोई, नहीं कहीं भी कुछ भी अन्य।
एक सर्वगत लीलामयकी लीला ही चल रही अनन्य॥
लीलामें विभिन्न रस होते, अभिनय होते विविध विचित्र।
रंगमंचपर समुद खेलते बनकर अभिनेता अरि-मित्र॥
इसी तरह है आज खेलना चीन-शत्रुसे हमको खेल।
उसे भगाना है भारतकी भव्य भूमिसे बाहर ठेल॥
कर विश्वासघात वह आया दस्यु भयानकका धर वेश।
उसके इस दुःसाहस दुष्टवृत्तिका है कर देना शेष॥
दाँत न खट्टे करने हैं, करना है विषदन्तोंको भंग।
जिससे हो जायें विषवर्जित निर्मल उसके सारे अंग॥
हो उत्पन्न सुबुद्धि, जगे फिर उसके उरमें पश्चात्ताप।
धर्म-ईशको माने, छोड़े नास्तिकताका सारा पाप॥
अतः लगाकर तन-मन-धन सब, लेकर प्रभुका ही आश्रय।
रखकर साथ धर्म-ईश्वरको जूझें हम रणमें निर्भय॥
सब कर्मोंका करें निरन्तर हम केवल प्रभुमें संन्यास।
करें युद्ध, तज आशा-ममता, करके कामज्वरका नाश॥
ईश-प्रार्थना देवाराधन हो रखकर श्रद्धा-विश्वास।
पूर्ण विजय हो भारतकी, हो पापबुद्धिका सहज विनाश॥
बल-विज्ञानयुक्त देशोंके प्रमुखोंमें उपजे सद्‌बुद्धि।
सबमें हो सद्‌भाव, सभीमें हो हितयुक्त प्रेमकी वृद्धि॥
सभी सभीको सुख पहुँचावें, सबका सभी करें सम्मान।
सबके ही शुचितम कर्मोंसे सदा सुपूजित हों भगवान्॥
हरिसेवामय शुद्ध कर्म यह जीवन सफल करे निष्काम।
मानवताका मिले परम फल निर्मल सच्चिन्मय परधाम॥

(२) प्रार्थनाके लिये सबसे प्रार्थना

सबके प्रभु! सर्वान्तर्यामी! सर्वशक्ति! हे सर्वाधार।
सुनो हमारी सत्य प्रार्थना, करो कृपा अनवरत अपार॥
दो हम भारतके निवासियोंको प्रभु! यह मंगल-वरदान।
भौतिक, आध्यात्मिक बलके हम हों विशुद्ध पूरे बलवान्॥
कभी चिरन्तन धर्म न छोड़ें—'शूरवीरता, साहस, प्रेम।
वैरशून्यता, राग-शून्यता, सर्वभूतहित, सर्व-क्षेम'॥
पूजें अपना रक्तदान कर रणमें, हम रणसे भगवान।
तन-मन-धन सबका ही कर दें सोत्साह पूरा बलिदान॥
शौर्य-शक्ति-बल-धर्म-त्यागका सुन्दर शुभ रक्खें आदर्श।
मिट जाये अन्यायी अत्याचारीका आसुर-उत्कर्ष॥
हो आसुर-दुर्मति, दुःसाहस, दुष्ट-प्रकृतिका पूरा नाश।
पूर्ण विजय पायें हम, छाये सभी ओर सात्विक उल्लास॥
चाहें कभी किसीका रञ्चक भी न बुरा हम किसी प्रकार।
सर्वोदय हो, सभी सुखी हों, प्रेम-धर्मका हो विस्तार॥
प्राणिमात्र सब सुखी शान्त हों, मिटें सभीके सारे खेद।
भेदरूप इस अखिल विश्वमें देखें एक अखण्ड अभेद॥

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

सन्तोषामृत पिया करें

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)

को वा दरिद्रो? हि विशालतृष्णः।
श्रीमांस्तु को? यस्तु समस्ततोषः॥

अर्थात् गरीब कौन है? जिसकी तृष्णा बड़ी है। अमीर कौन है? जो सदा सन्तुष्ट रहता है। भगवान्‌के दिये धनसे जिसे सन्तोष नहीं होता, वह मनका दरिद्र है और यही दुःखदायिनी दरिद्रता है।

टॉलस्टायकी एक कहानी है। एक लोभी व्यक्ति एक ऐसे राज्यमें पहुँचा, जहाँ कुछ रुपया देकर व्यक्ति यथेष्ट भूमि प्राप्त कर सकता था। प्रातःकालसे हल-बैल लेकर उसे एक स्थानसे प्रारम्भकर भूमिका चक्कर लगाना पड़ता था, सायंकालतक वह जितना बड़ा चक्र बना पाता था, भूमिका वही घेरा उसे दे दिया जाता था। फीस सबके लिये एक ही थी। यह व्यक्ति वहाँ पहुँचा और फीस देकर उसने भूमिका घेरा नापना प्रारम्भ किया। बड़ा घेरा बनानेके लोभमें वह चलता रहा। सायंकाल होते-होते वह इतना तेज चला कि घेरा पूर्ण करनेसे पहले ही गिरा और तुरन्त मर गया।

इस कहानीका शीर्षक है 'मनुष्यको कितनी भूमिकी आवश्यकता है?' अन्ततः वह व्यक्ति जितनी भूमिमें गाड़ा गया, उतनी ही भूमि उसे मिल सकी। वह बड़ा भूमिका घेरा व्यर्थ गया। कहानीका तात्पर्य यह है कि मनुष्य वृथा ही इतनी वस्तुओंकी तृष्णा करता है। अन्ततः वही उसकी मृत्युका कारण बनती है। विधिका बनाया हुआ एक निश्चित क्रम है। धन, भूमि, मकान, सम्पत्ति तथा नाना वस्तुओंके देनेकी एक सीमा है। भगवान् प्रत्येक व्यक्तिका ध्यान रख उसके निर्वाह और सुखके लिये पर्याप्त सुख-सुविधाएँ प्रदान करते हैं, किसीको कभी नहीं भूलते, निरन्तर देते रहते हैं, पर भगवान्‌के दिये धन, सुख-सुविधाओंसे जिसे सन्तोष नहीं होता, उसकी बड़ी दुर्दशा होती है, तृष्णा-पिशाचिनी उसे निगल लेती है।

ईश्वरके संसारमें मर्यादाके भीतर रहकर खाने-पीने-पहनने-ओढ़ने, शरीरकी नाना प्राकृतिक इच्छाओंकी पूर्तिके सभी साधन प्रचुरतासे हैं। किसीको किसी वस्तुकी कमी नहीं है। जीवनकी आधारभूत चीजें विपुलतासे बिखरी पड़ी हैं। जितना जिस-जिसके हिस्सेमें है, जितना जिसके भाग्यमें है, वह उसे देर-सबेर अवश्य प्राप्त होकर रहता है। कोई किसीके भाग्यके धन, सन्तान, सम्पत्ति, भूमि, ऐश्वर्य, मान, समृद्धिको उससे नहीं छीन सकता। शर्त यही है कि हम अपना कर्म करते रहें, परिश्रममें लापरवाही न करें; आलसी न बनें, मुफ्तका धन लूटनेकी चेष्टा न करें। जो काम हमें सौंपा गया है, कर्तव्य मानकर कठिन परिश्रम और सहयोगसे उसे पूरा करते रहें। अपना पेट भर लेनेके पश्चात् बचा हुआ धन या वस्तुएँ ईश्वरकी हैं, हमारी व्यक्तिगत पूँजी नहीं हैं, उन्हें समाजके अन्य जरूरतमन्द व्यक्तियोंको दे देने (दान करने)-में ही कल्याण है। आवश्यकतासे अधिक धन इत्यादि रखकर दूसरोंका शोषण करनेवाले मोक्षका सुख प्राप्त नहीं करते। तृष्णाके माया-जालमें अशान्त पड़े रहते हैं।

संसारकी विषय-वासनामें लिप्त व्यक्तिके दुःखोंका अन्त नहीं होता। एक आवश्यकताकी पूर्तिके बाद दूसरी; फिर तीसरी; चौथी अनन्त तृष्णाएँ, हजारों छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी इच्छाएँ उसके शान्ति-सुख और सन्तुलनको भंग करती रहती हैं। इन्द्रियोंको कभी सन्तोष नहीं मिलता। वासना कभी तृप्त नहीं होती। आसक्ति ही दुःखका मूल है।

संग्रहसे त्याग ही श्रेष्ठ है। संग्रहसे आसक्ति बढ़ती है। जीव संसारके माया-मोहमें और भी जटिलतासे बँधता जाता है। पद्मपुराणमें एक स्थानपर कहा गया है—

तपस्सञ्चय एवेह विशिष्टो धनसञ्चयात्।
त्यजतः सञ्चयान् सर्वान् यान्ति नाशमुपद्रवाः॥
न हि सञ्चयनात् कश्चित् सुखी भवति मानवः।
यथा यथा न गृह्णाति ब्राह्मणः सम्प्रतिग्रहम्॥
तथा तथा हि सन्तोषाद् ब्रह्मतेजो विवर्धते।
अकिञ्चनत्वं राज्यं च तुलया समतोलयत्।
अकिञ्चनत्वमधिकं राज्यादपि जितात्मनः॥

अर्थात् इस लोकमें धन-संचयकी अपेक्षा तपस्याका संचय ही श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति सब प्रकारके लौकिक संग्रहोंका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। संग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग कर देता है, वैसे-ही-वैसे सन्तोषके कारण उसके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिंचनताको और दूसरी ओर राज्यको तराजूमें रखकर तौला गया तो राज्यकी अपेक्षा जितात्मा पुरुषकी अकिंचनताका पलड़ा भारी रहा।

सबसे अधिक लोभ मनुष्यको धनका होता है। जितना धन प्राप्त होता है, उतनी ही तृष्णा बढ़ती जाती है। सौसे हजार, हजारसे दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, अरब निरन्तर धनकी इच्छा अधिकाधिक बढ़ती जाती है। मनुष्य यह भूल जाता है कि धन एक साधन है, स्वयं साध्य नहीं है। धनसे मनुष्यकी सात्त्विक आधारभूमिकी आवश्यकताएँ पूर्ण होनी चाहिये। बचे हुए धनको दानद्वारा दूसरे अभावग्रस्त व्यक्तियोंमें फैलाना चाहिये। यदि मर्यादासे बाहर जाकर कोई कृपण केवल धनका संग्रह ही कर्तव्य मान बैठता है तो वह बड़ी भारी मूर्खता करता है। स्कन्दपुराणमें कृपण धनीको पानीमें डुबा देनेका उल्लेख इस प्रकार है—

धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।
उभावम्भसि मोक्तव्यौ गले बद्ध्वा महाशिलाम्॥

अर्थात् जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्ट-सहनरूप तपसे दूर भागता है, इन दोनोंको गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये।

ऋषिकुमार नचिकेताने सत्य ही कहा है कि मनुष्य धनसे कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता। यदि हमने प्रभुके दर्शन पा लिये हैं, आत्मसाक्षात्कार कर लिया है तो असली धन हमने पा लिया है। माँगनेयोग्य वर तो आत्मसाक्षात्कार ही है।

पहले तो धनके पैदा करनेमें कष्ट होता है; फिर पैदा किये हुए धनकी रखवालीमें क्लेश उठाना पड़ता है, इसके बाद यदि वह कहीं नष्ट हो जाय तो दुःख और खर्च हो जाय तो फिर दुःख होता है। धन अधिक होनेपर तृष्णा और मोह तथा कम होनेपर हृदयमें जलन उत्पन्न करता है। अन्तमें धनके त्यागमें भी दुःख ही हाथ लगता है। आप ही सोचिये, धनमें सुख कहाँ है?

महर्षि कश्यपका वचन है कि 'यदि ब्राह्मणके पास धनका बड़ा संग्रह हो गया तो यह उसके लिये अनर्थका हेतु है। धन-ऐश्वर्यसे मोहित ब्राह्मण कल्याणसे भ्रष्ट हो जाता है। धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है, इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधनभूत अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसे धर्मके लिये भी धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये भी उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही अच्छा है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है। वही मोक्ष प्राप्त करानेवाला है।'

धनकी तरह विषय-वासनाकी इच्छा भी विषैली है। वासनाएँ निरन्तर बढ़ती हैं, कभी तृप्त नहीं होतीं। भोगवासना आजकलकी पाश्चात्य-सभ्यताकी कलंक-कालिमा है। जो कामी हैं, उनका विवेक नष्ट हो जाता है। जहाँ धन और बढ़ती हुई वासनाएँ हैं, वहाँ बुद्धि पंगु हो जाती है। वासनाभोग—विलासप्रिय व्यक्तिके पास यदि रुपया हो तो वह उसके लोकका नाश करनेवाला होता है, जैसे वायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमें सहायक होता है और जैसे दूध साँपके विषको बढ़ानेमें कारण होता है, वैसे ही दुष्टका धन उसकी दुष्टताको बढ़ा देता है। वासनाके मदमें अन्धा हुआ व्यक्ति देखता हुआ भी अन्धा ही रहता है। विषय-वासनाकी बढ़ती हुई इच्छाएँ प्रत्यक्ष विषके समान हैं।

इसी प्रकार सम्पत्ति एकत्रित करनेकी इच्छा भी उत्तरोत्तर बढ़ती है। एक मकानके पश्चात् दूसरा, फिर तीसरा, चौथा यहाँतक कि बड़े-बड़े महलोंके स्वामी भी नाना प्रकारकी नयी इच्छाओंके दास होते हैं। सम्पत्तिको बढ़ानेकी इच्छाका कभी अन्त नहीं होता। इसी प्रकार

सन्तानकी इच्छा भी कभी पूर्ण नहीं होती। इच्छाओंका बड़ी संख्यामें उत्पन्न होना ही मनुष्यके दु:खका कारण है, हमारी अपूर्णताका सूचक है। उच्चतम स्थितिपर पहुँचनेके लिये हमें इच्छाओंका दमन करते रहना चाहिये। उनमें आसक्ति कम करनेसे वृत्ति अन्तर्मुखी होती है।

हमें यह भलीभाँति स्मरण रखना चाहिये कि संसारमें कभी किसीकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई है। तृष्णा बढ़ती ही रही है। ईश्वरने अपने परिश्रमकी जो रोटियाँ हमें दी हैं, वही हम ईमानदारीसे लेते रहें, सदा अपनी मेहनतकी कमाईपर निर्भर रहें, यही श्रेष्ठ सुख-शान्तिका साधन है। आसक्तिका त्यागकर, क्रोधको जीतकर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धिसे इन्द्रियोंको रोककर ही हम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

जीर्यन्ति जीर्यत: केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत:।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥
चक्षु:श्रोत्राणि जीर्यन्ति तृष्णैका तरुणायते।

अर्थात् जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत उखड़ जाते हैं, पर यह तृष्णा ऐसी दुष्ट है कि सदैव तरुणी बनी रहती है।

अत: जो कुछ ईश्वरकी देनके रूपमें आपके पास है, उसे मर्यादाके भीतर रहकर भोगें और सन्तोषामृतका पान करते रहें।

सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं

धनदत्त नामक सेठके घर एक भिखारी आया। सेठ उसे एक मुट्ठी अन्न देने लगे तो उसने अस्वीकार कर दिया। झुँझलाकर सेठ बोले—'अन्न नहीं लेता, तब क्या मनुष्य लेगा?'

भिखारी भी अद्‍भुत हठी था। उसे भी क्रोध आ गया। उसने कहा—'अब तो मैं मनुष्य ही लेकर हटूँगा।' बैठ गया वह सेठके द्वारपर और अन्न-जल छोड़ दिया उसने। सेठ घबराये, उन्होंने उसे बहुत धन देना चाहा; किंतु भिखारी तो हठपर आ गया था। वह अड़ा हुआ था—'या तो मैं यहीं मरूँगा या मनुष्य लेकर उठूँगा।'

सेठजी गये राजाके मन्त्री तथा अन्य अधिकारियोंके पास सम्मति लेने। सबने कहा—'मर जाने दो उस मूर्खको।'

सेठजी लौट आये, किंतु थे बुद्धिमान्। उनके मनमें यह बात आयी कि अभी तो मन्त्री तथा राजकर्मचारी यह बात कहते हैं; किंतु यदि भिक्षुक सचमुच मर गया तो मेरी रक्षा करेंगे या नहीं, यह देख लेना चाहिये। वे फिर मन्त्रीके पास गये और बोले—'भिक्षुक तो मर गया।'

मन्त्री चौंक पड़े। कहने लगे—'सेठजी! यह तो बुरा हुआ। आपको उसे किसी प्रकार मना लेना था। यह मृत्यु आपके द्वारपर हुई। नियमानुसार इसकी जाँच होगी और उसमें आप निमित्त सिद्ध होंगे। पता नहीं आपको क्या दण्ड मिलेगा। मेरा कर्तव्य है इस काण्डकी सूचना राजाको दे देना। आप मुझे क्षमा करें। सरकारी कर्मचारी होनेसे मैं आपको कोई सलाह नहीं दे सकता।'

सेठजीने कहा—'धन्यवाद! मैं हँसी कर रहा था। वह अभी जीवित है।'

घर लौटकर सेठजीने कुछ सोचा और पत्नीको ले जाकर भिक्षुकके सामने खड़ी करके बोले—'तुम्हें मनुष्य ही लेना है न? इनको ले जाओ।'

भिक्षुक उठ खड़ा हुआ। वह बोला—'ये तो मेरी माता हैं। मैं अपनी बात सत्य करनेको अड़ा था, वह सत्य हो गयी। भगवान् आपका मंगल करें।' वह चला गया वहाँसे। [श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र']

साधकोंके प्रति—

संसारके वियोगमें सुख-शान्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हम यह जानते हैं कि संसारसे हमारा नित्य-सम्बन्ध नहीं रहता है। इस वास्तविकताका हम सबको अनुभव है; परंतु हम इस जानकारीपर कायम नहीं रहते। हम संसारसे अपना सम्बन्ध मानते हैं—यही हमारी गलती होती है। यदि हम इस जानकारीपर कायम रह जायँ अर्थात् हम संसारसे सम्बन्ध न जोड़ें तो आज, अभी बेड़ा पार है।

हम संसारके संयोग बिना रह सकते हैं, पर वियोग बिना नहीं रह सकते, जी नहीं सकते अर्थात् संसारकी वस्तुओं, व्यक्तियों और पदार्थोंसे सम्बन्ध रखकर हमें उतना सुख नहीं मिलता, जितना सुख उनके वियोगसे मिलता है। इसपर पूछा जा सकता है कि यह बात कैसे है? जैसे, हमें गाढ़ नींद आती है। उस गाढ़ नींदमें किसी व्यक्ति या वस्तुसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता, सम्पूर्ण वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको हम भूल जाते हैं। इनके भूलनेमें जितनी सुख-शान्ति है, इन वस्तुओंको याद रखनेमें उतनी सुख-शान्ति नहीं है।

नींद लेनेकी हमारी प्रवृत्ति जन्मे तबसे है। हम जब नींद लेते हैं, तब संसारको भूलते ही हैं। संसारसे विमुख हुए बिना हम आठ पहर भी सुखपूर्वक जी नहीं सकते। अगर कई दिनतक नींद न आये तो मनुष्य पागल हो जाय। जितनी खुराक हमें नींदसे मिलती है, उतनी खुराक पदार्थों-व्यक्तियोंके सम्बन्धसे नहीं मिलती, प्रत्युत व्यक्तियों और पदार्थोंका सम्बन्ध रखनेसे तो थकावट होती है। वह थकावट नींदसे दूर होती है। नींदसे शरीरमें, इन्द्रियोंमें, अन्तःकरणमें नयी शक्ति-ताजगी और स्फूर्ति आती है और पदार्थों, व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध माननेसे ताजगी-शक्तिका ह्रास होता है।

नींद तो हम बचपनसे ही लेते आये हैं, पर पदार्थोंसे हमारा सम्बन्ध निरन्तर नहीं रहा है। बचपनमें खिलौने जितने अच्छे लगते थे, उतने और पदार्थ तथा व्यक्ति अच्छे नहीं लगते। घर उतना अच्छा नहीं लगता था, जितना खेल अच्छा लगता था। इसके बाद अब जवानीमें रुपये-पैसे अच्छे लगने लग गये तो खिलौने अच्छे नहीं लगते, पर नींद अब भी वैसी-की-वैसी अच्छी लगती है। खिलौने प्यारे लगते थे, तब भी नींद अच्छी लगती थी और नींदसे सुख मिलता था। अब रुपये अच्छे लगने लगे तो भी नींद अच्छी लगती है; परंतु रुपयोंको भुला करके जो नींद आती है, वह नींद और भी अच्छी लगती है।

अब विवाह हुआ तो स्त्री, पुत्र और परिवार बड़ा अच्छा लगने लगा। उस परिवारके लिये रुपये भी खर्च कर देते हैं; परंतु गहरी नींदके लिये स्त्रीको, पुत्रको, मित्रोंको, कुटुम्बियोंको भी छोड़ देते हैं। जिनके मोहमें फँसकर मनुष्य झूठ, कपट, बेईमानी, चोरी, ठगी, धोखेबाजी आदि करते हैं, गाढ़ नींदके लिये उन सबका त्याग कर देते हैं। जब वृद्धावस्था आती है तो मनुष्योंका परिवारमें स्वतः बहुत मोह बढ़ जाता है; परंतु गाढ़ नींदके लिये तो इन्हें भी छोड़कर जब धन, मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार आदिको छोड़कर साधु हो जाते हैं, विरक्त-त्यागी बन जाते हैं तब भी नींद लेते हैं। जब नींद आती है तो साधुपनसे भी वियोग होता है, तब भी नींदमें वैराग्य-त्यागसे भी वियोग होता है; तात्पर्य यह है कि मनुष्योंको प्रत्येक परिस्थितिमें नींद प्रिय लगती है। जब नींद नहीं आती, तब नींद आ जाय तो अच्छा है—यही भाव रहता है। नींद आनेके लिये मनुष्य पूरी तैयारी करते हैं। अच्छा बिछौना बिछाते हैं, आरामके लिये खूब बढ़िया तकिया लगाते हैं, तरह-तरहके गद्दे लगाते हैं, बढ़िया पंखे भी रखते हैं। हल्ला-गुल्ला न हो, ऐसी व्यवस्था करते हैं, जिससे कि आरामसे नींद आ जाय।

मनुष्य तरह-तरहके भोग भोगते हैं, कितने ही मनोहर दृश्य देखते हैं, सिनेमा आदि भी देखते हैं, पर

जब नींद आने लगती है, तब वे नहीं सुहाते। तब वह यही कहते हैं कि अब तो हमें नींद लेने दो। अब हम नींद लेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि नींद सभी वस्तुओं, दृश्यों, व्यक्तियोंसे बढ़कर प्यारी है। नींदके लिये सब कुछ त्यागा जा सकता है, पर नींदका त्याग नहीं किया जा सकता; परंतु यदि कहीं भगवत्प्रेम हो जाय, भजनमें रस आने लग जाय तो उस समय फिर नींद भी अच्छी नहीं लगती। एक सन्तका पद है—***'बैरिन हो गई निन्दरिया'***—यह नींद हमारी बैरिन हो गयी। उस समय तो वे यही चाहते हैं कि नींद न आये तो अच्छा है। इससे सिद्ध होता है कि जिसके लिये प्यारी-से-प्यारी नींदका भी त्याग किया जा सकता है, वह परमात्मा ही हमें सबसे अधिक प्रिय लगने चाहिये; क्योंकि उस परमात्माके साथ हमारा सच्चा, नित्य और वास्तविक सम्बन्ध है, किंतु संसारसे हमारा बनावटी सम्बन्ध है, जो कि हमारा माना हुआ है; अतः इससे वियोग होगा ही। इससे वियोग हुए बिना शान्ति और सुख मिल नहीं सकते।

हमारा यह अनुभव है कि संसारके वियोगसे सुख होता है। सांसारिक संयोगके बिना हम रह सकते हैं; परंतु वियोगके बिना नहीं रह सकते। संसारके वियोगका अनुभव तो जीवमात्रको है। जीवमात्र नींद लेता है, पशु-पक्षी सभी नींद लेते हैं। तात्पर्य यह है कि संसारसे वियोग हर एक प्राणी चाहता है। संसारके संयोगमें तो कमीसे भी काम चल सकता है; जैसे—किसीको घीसे चुपड़ी हुई रोटी मिलती है और किसीको रूखी मिलती है, किसीको बढ़िया मकान मिलता है और किसीको झोपड़ीतक नहीं मिलती। दो मनुष्योंकी सुख-सामग्री भी एक समान नहीं होती, परंतु नींदमें सब समान हैं, अर्थात् संसारके वियोगमें सब बराबर हैं। वस्तुओंके बिना हम जितने सुखी होते हैं, उतने सुखी वस्तुओंके संगमें नहीं होते। वियोगका यह सुख सबको समानरूपसे प्राप्त है। यह वियोग स्वाभाविक है; क्योंकि नींदकी ओर सबकी प्रवृत्ति स्वतः होती है—यह सबके अनुभवकी बात है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थोंसे संयोग हम जोड़ते हैं और इनसे वियोग स्वतःसिद्ध है।

नींदमें सबसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, परंतु संसारके साथ प्राणियोंका जो माना हुआ सम्बन्ध है, उसे पकड़े हुए ही प्राणी नींद लेते हैं। इसी कारण वे जागकर फिर उसी संसारके सम्बन्धमें लग जाते हैं। अवस्था बदलती है, परिस्थिति बदलती है, घटनाएँ बदलती हैं, व्यक्ति बदल जाते हैं, देश, काल सब बदल जाते हैं—ये तो सब बदलते रहते हैं, पर संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेवाला अर्थात् इनसे अलग अपना होनापन—स्वयंकी सत्ता कभी नहीं बदलती। वह एक ही रहती है; क्योंकि वह हमारा निजी स्वरूप है। संसारके साथ सम्बन्ध अवास्तविक अर्थात् माना हुआ है, जबकि संसारके साथ सम्बन्ध-विच्छेद वास्तविक है अर्थात् माना हुआ नहीं है।

संसार-शरीरसे हमारा सम्बन्ध-विच्छेद प्रतिक्षण हो ही रहा है; जैसे—बालकपनसे सम्बन्ध-विच्छेद हुआ, जवानीसे हुआ, नीरोगतासे हुआ, रोगीपनसे हुआ, धनवत्तासे हुआ, निर्धनतासे हुआ और कई व्यक्तियोंसे संयोग होकर वियोग हुआ। इस प्रकार संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद अवश्यम्भावी है; क्योंकि संयोग केवल माना हुआ है। हमसे बड़ी भारी भूल यह होती है कि माने हुए संयोगको तो सच्चा मान लेते हैं और वियोग जो स्वतः हो रहा है, उधर ध्यान ही नहीं देते। वियोगमें जितना सुख है, जितनी शान्ति है, उतनी संयोगमें है ही नहीं। यदि पदार्थोंके संयोगमें सुख-शान्ति-रस आता तो नींद छूट जाती; जैसे कि भजनमें जब रस आने लगता है तो नींद, भूख और प्यास सब छूट जाती है; इनकी परवाह नहीं होती।

दरियावजी महाराजकी वाणीमें आता है कि भगवान्‌के प्रेममें नींद, भूख और प्यास आदि शरीरके निर्वाहकी जो मुख्य चीजें हैं, इन्हें भी हम भूल जाते हैं। इसका अर्थ

यह हुआ कि असली सम्बन्धकी जागृति होनेपर उसे छोड़कर नकली सम्बन्धको कौन रखेगा? नकली सम्बन्धको कौन रखना चाहेगा? संसारका सम्बन्ध, शरीरका सम्बन्ध हमारा स्वयंका नहीं है, वह माना हुआ है। इसको हम आज छोड़ दें तो आज ही निहाल हो जायँ। सम्बन्ध छोड़नेका अभिप्राय यह नहीं है कि हमें कहीं जंगलमें जाना है या साधु बनना है। हमें कहीं जाना नहीं है। बस, हमारे भीतर यह भाव आ जाय कि यह संसार हमारा नहीं है, हमारे तो केवल भगवान् हैं। वस्तुओंसे जो सम्बन्ध है, वह तो केवल उनका सदुपयोग करनेके लिये है। व्यक्तियोंसे जो सम्बन्ध है, वह उनकी सेवा करनेके लिये है; परंतु व्यक्ति और वस्तुएँ हमारे लिये नहीं हैं। न तो हमारे लिये कोई व्यक्ति है और न हमारे लिये कोई वस्तु है। हमारे कहलानेवाले जो भाई, भौजाई, स्त्री, पुत्र, माता, पिता आदि हैं, इन सबकी वस्तुओंद्वारा सेवा करनी है; क्योंकि शरीर इनका ही है, इनसे ही मिला है, इनसे ही पुष्ट हुआ है। इसलिये शरीरको इनकी सेवामें लगा दो।

हमें इनसे कुछ लेना नहीं है, हमारा कुछ नहीं है। बस, इनकी वस्तुएँ इनकी सेवामें लग जायँ। हमें तो केवल इनका सदुपयोग करनेका अधिकार मिला है, इसलिये अपने अधिकारका सदुपयोग करना है—इसीका नाम है कर्मयोग। भगवान्ने कर्मयोगका विवेचन करते हुए गीताजीमें कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

(२।४७)

कर्तव्य-कर्ममें तेरा अधिकार है, फलमें कभी नहीं। और यह भी कहा कि अकर्ममें भी तेरी आसक्ति न हो अर्थात् कर्म न करनेमें भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिये। अत: इनकी और संसारकी सेवा कर दो। सेवाके साथ अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। अपनेको कुछ चाहिये ही नहीं। इस कारण फलका हेतु भी नहीं बनना है।

खूब तत्परतासे, सुचारुरूपसे, पूरी योग्यता लगाकर कर्म करना है। क्यों करना है? क्योंकि मनुष्य-शरीर मिला ही है, सेवा करनेके लिये; भोगके लिये नहीं। भोग तो अन्य योनियोंमें भी मिलते हैं। सेवा करके भगवत्प्राप्ति करनेमें ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है। 'मानव' नाम मनुष्यकी आकृतिका नहीं है, किंतु इसमें जो विवेक-शक्ति है, वही 'मानव' है। यह विवेक हमें संसारके साथ अपने माने हुए सम्बन्धका विच्छेद करनेके लिये मिला है, संसारमें लिप्त रहने, चिपकनेके लिये नहीं। सेवा सम्बन्ध-विच्छेद करानेमें सहायक है। इसलिये कर्मयोगकी प्रणालीसे ही सभी कर्म करने चाहिये।

संसारके साथ हमारा सम्बन्ध केवल सेवा करनेके लिये ही है, संसारसे हमें और क्या मतलब? माता-पिताकी सेवा करनी है; स्त्री-पुत्रका पालन-पोषण करना है, सबकी सेवा करनी है। इनसे सम्बन्ध मानकर सुख लेनेसे हमें उतनी वास्तविक शान्ति नहीं मिलती, जितनी इनकी सेवा करके सम्बन्ध-विच्छेद करनेसे मिलती है। इनकी सेवा करके इनसे अलग होनेमें जितना सुख मिलता है, उतना सुख कभी भी इनके संयोगमें नहीं मिलता। संसारके साथ किसी सम्बन्धमें ऐसी प्रियता नहीं है, जिसके लिये मनुष्य नींद, भूख और प्यास छोड़ दे, पर प्रभुके साथ सम्बन्ध जुड़नेपर नींद अच्छी नहीं लगती, खाना-पीना अच्छा नहीं लगता।

नारदजीकी माँ मर गयी। वे जंगलमें चले गये, पर भगवत्प्रेमकी लगनमें उन्हें यह ध्यान ही नहीं आया कि मैं जंगलमें क्या खाऊँगा? क्या पीऊँगा? कहाँ रहूँगा? उनकी तो केवल एक ही लगन थी—भगवान्की ओर चलनेकी। वे वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठे, उनका मन भगवान्में लग गया। समाधि लग गयी। कुछ देर बाद समाधि खुल गयी तो व्याकुल हो गये। वे बहुत अधिक व्याकुल हुए तो आकाशवाणी हुई कि '**दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्**' यानी कुयोगियोंको मैं दर्शन नहीं देता। इस शरीरके बाद जब तुम्हारा ब्रह्माजीसे पुत्ररूपमें जन्म होगा, उस समय मेरी प्राप्ति होगी। आकाशवाणीसे

उनको निराशा नहीं हुई, प्रत्युत चटपटी बढ़ी। अब नारदजी चाहते हैं कि मैं कब मरूँ, कब शरीर छूटे! दुनिया तो शरीर चाहती है कि हम जीते रहें और वे चाहते हैं कि यह शरीर कब छूटे।

संसारमें अपने शरीरके जीनेकी जितनी इच्छा होती है, उतनी कुटुम्बके जीनेकी इच्छा नहीं होती। गाय नवजात बछड़ेपर बहुत स्नेह रखती है। बछड़ेको छोड़कर जंगलमें चरने भी नहीं जाती; परंतु जब हम उसे मारने-कूटने लगते हैं, तब वह जंगलमें चली जाती है। जंगलमें जाकर घास चरती है, पर घास चरते-चरते जब बछड़ा याद आ जाता है तो 'हुम'—ऐसे हुंकार करती है और मुँहसे घास गिर जाती है। बछड़ेके साथ घाससे ज्यादा प्रेम है। प्रेम घासके साथ भी है ही; क्योंकि घास भी खा रही है। सायंकालमें जब वह वापस लौटती है, तब सब गायोंसे अगाड़ी भागती है। पहले भागकर हुंकार करती हुई बछड़ेके पास जाती है, बछड़ेको प्यार करती है, उसे दूध पिलाती है। उसका बछड़ेपर प्रेम है और घासपर भी है, पर अपने शरीरपर सबसे अधिक प्रेम है; क्योंकि उसपर लाठी पड़ती है तो वह बछड़ेको छोड़ देती है, घासको छोड़ देती है अर्थात् उसके शरीरपर जब नौबत आती है तो वह बछड़े और घासकी भी परवाह नहीं करती। तात्पर्य यह है कि शरीरमें उसका एक नम्बरका प्रेम है, बछड़ेमें दो नम्बरका प्रेम है तथा घासमें तीन नम्बरका प्रेम है। पशुका शरीरमें जिस तरह मोह होता है, उसी तरह मनुष्यका भी शरीरमें अत्यधिक मोह होता है; परंतु मनुष्योंमें विवेक है, इस वास्ते वह शरीरसे मोह हटाकर भगवान्‌में प्रेम कर सकता है; क्योंकि वह जानता है कि यह शरीर तो हरदम रहेगा नहीं, शरीर हरदम बदलनेवाला है, बदल रहा है और परमात्मा हरदम रहते हैं। 'हम उसीके अंश हैं' 'हम उसीके हैं'—हमें जब यह पहचान हो जाती है, तब शरीरकी आसक्ति और मोह छोड़कर हम परमात्मामें ही लग जाते हैं। जैसे, नारदजी पूर्वजन्ममें भगवान्‌में लगे थे। परमात्माके साथ हमारा सम्बन्ध अपना माना हुआ (नकली) है। इस वास्तविकताको हम जानते हैं। यदि इसपर दृढ़ रहें तो हमारा बहुत ही शीघ्र कल्याण हो जाय।

नारायण! नारायण! नारायण!

मनमें हैं, मनमोहन

(श्रीमती करुणाजी मिश्रा)

वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में।
तू ढूँढ़ता है जिसको मन्दिर में मूर्तियों में॥
मुस्का रहा है वो ही खुद तेरे तन और मन में।
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में॥
सृष्टि के हर चेतन में इस सारे भू-मण्डल में।
लहरा रहा है वो ही चींटी या गज के तन में॥
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में।
सूरज की हर किरण में सागर की हर तरंग में॥
बिखरा रहा है वो ही यह चाँदनी गगन में।
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में॥
हर खेत में खलिहान में हर बाग में कुंजन में।
महका रहा है वो ही फुलवाड़ियाँ चमन में॥
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में।
हर फूल में कली में हर डाल में टहनी में॥
फैला रहा है वो ही यह खुशबू उपवनों में।
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में॥
कोयल के मृदु स्वरों में भँवरों की गुंजनों में।
मस्ता रहा है वो ही तितली की थिरकनों में॥
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में।
वृद्धों में और तरुण में बालक में और बड़ों में॥
ज्योती उसी प्रभू की जलती है हर जीवन में।
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में॥
तू ढूँढ़ता है जिसको मन्दिर में मूर्तियों में।
वो साँवला सलोना रहता है तेरे मन में॥

छान्दोग्योपनिषद् और श्रीकृष्ण

(महात्मा श्रीनारायण स्वामीजी)

छान्दोग्योपनिषद्‌में वर्णित है कि—

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायो-क्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणꣳ शितमसीति।

(छान्दो० प्र० ३ खण्ड १७)

अर्थात् देवकीपुत्र श्रीकृष्णके लिये आंगिरस घोर ऋषिने शिक्षा दी कि जब मनुष्यका अन्त समय आये तो उसे इन तीन वाक्योंका उच्चारण करना चाहिये—

(१) **त्वं अक्षितमसि**—ईश्वर! आप अविनश्वर हैं,

(२) **त्वं अच्युतमसि**—आप एकरस रहनेवाले हैं,

(३) **त्वं प्राणसंशितमसि**—आप प्राणियोंके जीवनदाता हैं। श्रीकृष्ण इस शिक्षाको पाकर अपिपास हो गये अर्थात् उन्होंने समझा कि अब और किसी शिक्षाकी उन्हें जरूरत नहीं रही। यहाँ स्वाभाविक रीतिसे एक शंका होती है और वह यह है कि एक बात अन्तके समय करनेके लिये कही गयी थी, फिर और शिक्षाओंसे श्रीकृष्ण अपिपास क्यों हो गये? इस प्रश्नके उत्तरके लिये हमारी दृष्टि एक वेदमन्त्रपर पड़ती है, वह मन्त्र इस प्रकार है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳस्मर क्रतो स्मर कृतꣳस्मर॥

(यजु० ४०। १७)

मन्त्रका आशय यह है कि शरीरोंमें आने-जानेवाला जीव अमर है, परंतु यह शरीर केवल भस्मपर्यन्त है। इसलिये उपदेश दिया गया है कि जब इन दोनोंके वियोगका समय हो तो हे क्रतो (जीव) बलप्राप्तिके लिये ओ३म्‌का स्मरण कर और अपने किये हुए (कर्म)-का स्मरण कर।

मनुष्यका जीवन दो हिस्सोंमें बँटा हुआ होता है—(१) एक भाग उस समयतक रहता है, जबतक मनुष्य मृत्युशय्यापर नहीं आता—जीवनके इस हिस्सेमें मनुष्यको कर्म करनेकी स्वतन्त्रता होती है (२) दूसरा भाग वह है, जिसमें मनुष्य मृत्युशय्यापर होता है—इस हिस्सेमें कर्मस्वातन्त्र्य नहीं रहता, अपितु पहले हिस्सेमें किये हुए कर्म इस हिस्सेमें प्रतिध्वनित होते हैं—अर्थात् इस दूसरे हिस्सेको पहले हिस्सेकी चित्र (फोटो) खींचनेवाली अवस्था कह सकते हैं। जीवनके पहले भागमें जिस प्रकारके भी कर्म मनुष्य करता है, जीवनका दूसरा भाग उसका चित्र खींचकर उन्हें संसारके सामने रख दिया करता है। यदि एक मनुष्यने वित्तैषणामें जीवन व्यतीत किया है तो अन्तमें, महमूदकी तरह, उसे धनके लिये ही रोते हुए, संसारसे जाना पड़ेगा। इसी प्रकार पुत्रैषणा और लोकैषणावालोंका अनुमान कर लें, मन्त्रमें पहली शिक्षा ओ३म्‌का स्मरण कर, यह उपदेशरूपमें है अर्थात् मनुष्योंको यत्न करना चाहिये कि जीवनके पहले हिस्सेमें ओ३म् (ईश्वर)-का स्मरण और जप करें, जिससे अन्त समयमें भी उनके मुखसे ओ३म् (ईश्वरका नाम) निकल सके। यदि कोई चाहे कि पहला भाग नास्तिकता और ईश्वरसे विमुखताके कार्योंमें व्यतीत करके अन्तमें मक्कारीसे लोगोंको दिखानेके लिये ईश्वरका नाम उच्चारण करें तो यह असम्भव है। इसी भावको श्रीतुलसीदासजीने बड़ी उत्तम रीतिसे वर्णन किया है। ***'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥'***

इसीलिये मन्त्रकी दूसरी शिक्षा कि 'अपने किये हुएका स्मरण कर' नियमरूपमें है और अटल है। अर्थात् अन्तमें मरते समय मनुष्यके मुँहसे वही बातें निकलेंगी, उसकी आकृतिसे वही भाव प्रकट होंगे, जिनमें उसने जीवनका पहला भाग व्यतीत किया है। इस नियमके समझ लेनेके बाद अब सुगमताके साथ उस शंकाका समाधान हो सकता है, जो श्रीकृष्ण महाराजके अन्य शिक्षाओंसे अपिपास होनेके सम्बन्धमें उत्पन्न हुई थी। कृष्णजीने समझा कि अन्तकी बेलामें '**त्वं अक्षितमसि**' इत्यादि वाक्य तभी उच्चारण किये जा सकते हैं, जब कि उनका जीवनके पहले भागमें जप और अभ्यास किया हो; अतः स्पष्ट है कि आंगिरस घोर ऋषिकी शिक्षा, यद्यपि अन्तके समयकी एक शिक्षा थी, परंतु था वह वास्तवमें सारे जीवनका प्रोग्राम। इसलिये कृष्ण महाराजका अपिपास होना स्वाभाविक था। कृष्णजीने अर्जुनको गीताका उपदेश देते हुए इस शिक्षाका भी उपदेश किया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८। १३)

अर्थात् जो अविनश्वर ओ३म् ब्रह्मका उच्चारण और मेरा स्मरण करता हुआ इस शरीरको छोड़कर संसारसे जाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। उपनिषद् या गीतामें कृष्ण महाराजकी दी हुई यह शिक्षा उपादेय और आचरितव्य है।

गोस्वामी तुलसीदासजीका वर्षा-वर्णन

(डॉ० श्रीरोहिताश्वकुमारजी अस्थाना, एम०ए०, बी०एड०, पी-एच०डी०)

भक्तिकालको हिन्दी साहित्यका स्वर्णयुग कहा गया है। इस युगको कबीर, सूर और तुलसी-जैसे महाकवियोंने अपने साहित्यिक योगदानसे अलंकृत किया है। हिन्दीमें रामकथाके अमर गायक गोस्वामी तुलसीदासजीका विशिष्ट स्थान है। उन्होंने लोकमंगलकी भावनासे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीके मंगलमय चरित्रका गायन प्राय: अपनी समस्त कृतियोंमें किया है। श्रीरामचरितमानस उनका विशिष्ट महाकाव्य है। प्राय: समस्त कवियोंने अपने महाकाव्योंमें 'ऋतुवर्णन' कुशलतासे प्रस्तुत किया है। महाकवि जायसीने 'पद्मावत' में बारहमासाके रूपमें ऋतुओंका मार्मिक वर्णन किया है।

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस'के किष्किन्धाकाण्डमें वर्षाऋतुका सुन्दर, जीवन्त और मनोहारी वर्णन किया है। इसकी विशिष्टता यह है कि आधी चौपाईमें वर्षा-वर्णन है, तो आधी चौपाईमें उसकी उपमा नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन-मूल्योंसे दी गयी है। यह अपने-आपमें अद्वितीय और विलक्षण है।

प्रभु श्रीरामने सुग्रीवको अनेक प्रकारसे राजनीतिकी शिक्षा देते हुए वानरपतिका प्रतिष्ठित पद सौंपते हुए कहा कि वह चौदह वर्षतक वनवासमें हैं, अत: वर्षा-ऋतु आ जानेके कारण बस्तीमें न रहकर प्रवर्षणपर्वतपर ही रहकर अपने धर्मका पालन करेंगे। प्रभुके रहनेके लिये देवताओंने पहलेसे ही एक गुफाको सजा रखा था, प्रभुके निवाससे वन भी मंगलमय हो उठा था। वहाँ भगवान् श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मणके साथ रह रहे थे, इसी बीच घमण्डी बादल आकाशमें उमड़-घुमड़कर गम्भीर गर्जना करने लगे। प्रभुने इस परिदृश्यको कितनी मार्मिकतासे प्रस्तुत किया है, वह द्रष्टव्य है—

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

इसी बीच बादलोंमें बिजली चमकने लगी। गोस्वामीजी कहते हैं—

दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

अर्थात् जिस प्रकार बिजलीकी चमक बादलोंमें नहीं ठहरती, उसी प्रकार दुष्टकी प्रीति भी स्थिर नहीं रहती।

वर्षाकी गतिविधियाँ आगे बढ़ती हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें॥

अर्थात् बादल धरतीके निकट आकर उसी प्रकार बरस रहे हैं, जिस प्रकार विद्या पाकर विद्वज्जन विनम्र हो जाते हैं और बूँदोंके आघातको पर्वत उसी प्रकार सहते हैं, जिस प्रकार दुष्टोंके वचन साधुजन सहन करते हैं।

वर्षाके जलसे भरकर छोटी नदियाँ अपने किनारोंका अतिक्रमण करके बह निकलती हैं, जैसे दुष्टजन थोड़े-से धनको पाकर अहंकारसे इतरा उठते हैं। वर्षाका जल धरतीपर गिरकर धूल, मिट्टीसे वैसे ही गन्दा हो जाता है, जैसे शुद्ध और सात्त्विक जीवमें माया लिपट गयी हो। कविके शब्दोंमें इसी प्रसंगको देखिये—

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

वर्षाका जल बह-बहकर तालाबोंमें भर रहा है, जैसे श्रेष्ठ गुण एक-एक करके सज्जनोंके निकट चले आते हैं। नदियोंका जल समुद्रमें गिरकर उसी प्रकार स्थिर हो जाता है, जिस प्रकार जीव श्रीहरिको प्राप्तकर अचल और आवागमनसे मुक्त होकर मोक्षको पा लेता है। गोस्वामीजी वर्षा-ऋतुके वर्णनको आगे बढ़ाते हुए कहते हैं—

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

वर्षा-ऋतुके जलसे भूमि हरी घाससे भर उठती है। चारों ओर हरियाली छा जाती है, जिससे मार्ग स्पष्ट नहीं दीख पड़ते हैं, जैसे कलियुगमें पाखण्डवादके प्रचार-प्रसारसे सद्ग्रन्थोंकी उपयोगिता विलुप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ—

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥

वर्षाकालमें चारों ओर मेढकोंकी टरटराहटकी संगीतमयी ध्वनि बड़ी सुहावनी लगती है। गोस्वामीजी इसकी उपमा देते हुए कहते हैं, मानो विद्यार्थियोंका समूह वेदपाठ कर रहा हो। चौपाई देखिये—

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥

इसी प्रकार वृक्षोंमें नये एवं हरे-भरे पत्ते इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे साधकका मन ज्ञान प्राप्त हो जानेपर प्रसन्नता एवं ताजगीसे भर उठता है। चौपाई देखें—

नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

वर्षाकालमें धूल कहीं खोजनेपर भी नहीं मिलती है। गोस्वामीजी इसकी उपमा देते हुए कहते हैं, जैसे क्रोधका प्रभाव होनेपर धर्म स्वत: ही दूर हो जाता है। यथा—

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥

और वर्षा-ऋतुमें धरती फसलोंसे सम्पन्न हो उठती है। गोस्वामीजी ने इन हरी-भरी फसलोंमें उपकारी पुरुषोंकी सम्पत्तिकी कल्पना की है। यथा—

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥

इसी प्रकार वर्षा-ऋतुमें रात्रिके गहन अन्धकारमें चमकते हुए जुगुनू अत्यन्त ही सुहावने लग रहे हैं। इन जुगुनुओंके रूपमें तुलसीदासजी अहंकारीजनोंके समाजकी कल्पना करते हुए कहते हैं—

निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥

मूसलाधार वर्षासे खेतोंकी क्यारियाँ फूट जाती हैं और पानी बाहर निकल जाता है। तुलसीदासजी इसकी उपमा स्वतन्त्र होनेसे स्त्रियोंके बिगड़ जानेसे देते हैं। यथा—

महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥

इसी प्रकार वर्षा-ऋतुमें कुशल किसान अपने खेतोंकी निराई कर रहे हैं। खेतोंकी फसलोंमेंसे अनावश्यक एवं हानिकारक घास आदिको वे निकालकर फेंक रहे हैं। निराईके बहाने घासको किसान उसी प्रकारसे त्याग रहा है, जैसे विद्वज्जन मोह, मद और अहंकारका त्याग करते रहते हैं। गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

परंतु ऊसर भूमिमें वर्षाका जल भी निष्प्रभावी रह जाता है; क्योंकि ऊसरमें घासतक नहीं उगती है। गोस्वामीजीका मत है कि ऊसरमें उसी प्रकार घासतक नहीं उगती, जैसे भगवद्भक्तोंके हृदयमें कामभावनाका जागरण नहीं होता है। उदाहरणार्थ—

ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥

वर्षा-ऋतुमें पृथ्वीपर अनेक प्रकारके लघु जीव, कीट आदि उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे सुराज्यकालमें प्रजाकी अभिवृद्धि होती है। गोस्वामीजीके मतानुसार—

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥

इसी प्रकार वर्षा-ऋतुमें कभी-कभी वायु अत्यन्त ही वेगसे चलने लगती है, जिससे बादल उसी प्रकार जहाँ-तहाँ विलुप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार कुपुत्रके जन्म लेनेसे वंशके उत्तम धर्म और आचरण नष्ट हो जाते हैं। गोस्वामीजीने अपने एक दोहेमें यह बात कितनी सहजतासे कही है। जरा देखिये—

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं॥

कभी-कभी वर्षा-ऋतुमें बादलोंके कारण घनघोर अँधेरा छा जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह सब उसी प्रकार हो जाता है, जैसे कुसंगके प्रभावसे ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंगको पाकर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वर्षाऋतुसे सम्बन्धित इस प्रसंगमें गोस्वामीजीका एक दोहा द्रष्टव्य है—

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्षा-ऋतुके इन मनोहारी दृश्यों-परिदृश्योंका गोस्वामी तुलसीदासजीने जिस कवि-कौशलसे जीवन्त प्रस्तुतीकरण किया है, वह अपने-आपमें अद्वितीय है। वर्षा-ऋतुकी विभिन्न प्रक्रियाओंके वर्णनमें तुलसीदासजीने नैतिक एवं सामाजिक जीवन-मूल्योंपर आधारित नवीन उपमाओंका जो सांगोपांग प्रयोग किया है, वह सचमुच विलक्षण है। इस आधारपर महाकवि तुलसीदासजीका वर्षा-वर्णन अन्य समकालीन एवं परवर्ती कवियोंसे अलग हटकर है। चूँकि तुलसीदासजी भक्तिकालीन आदर्शवादी कवि हैं, अत: उनका वर्षा-वर्णन उनकी विचारधारा एवं आध्यात्मिक गरिमाके अनुरूप ही है।

मानस-पूजा

(डॉ० सुश्री सुनीताजी शास्त्री)

मानस-पूजा उपासनाकी अत्यन्त अद्‌भुत प्रक्रिया है, इसमें जैसी आत्मशान्ति-आत्मतृप्ति मिलती है, वैसी उपासनाकी अन्य प्रक्रियाओंमें दुर्लभ है, साथ ही इसमें मिलता है अपने इष्टका मिलन, जो आँख खोलनेकी भी आज्ञा नहीं देता। बाह्य दर्शनकी इच्छा ही नहीं होती और मन उसीमें तल्लीन रहना चाहता है—

श्रीरामचरितमानसके अरण्यकाण्डमें श्रीसुतीक्ष्णजीका प्रसंग आता है। सुतीक्ष्णजी मुनि अगस्त्यके शिष्य और भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि श्रीरामजी अनुज लक्ष्मण और जानकीजीके साथ आ रहे हैं, तो उन्हें प्रेमोन्माद हो आया। वे हृदयमें भगवान्

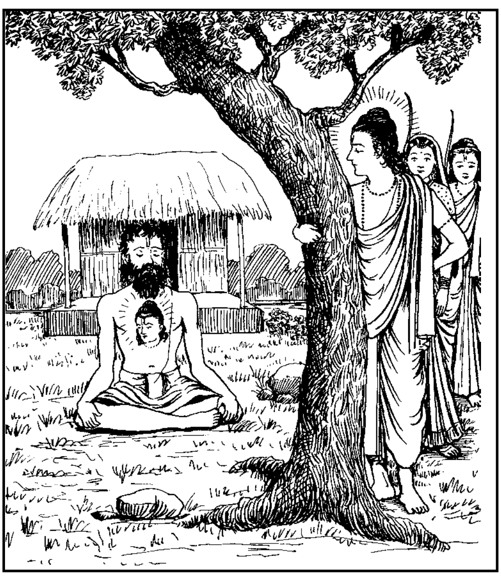

श्रीरामका ध्यानकर मार्गमें ही बैठ गये। भगवान् श्रीराम जब उनके पास आ गये, तब भी वे ध्यानजनित सुखमें मग्न हो आँखें बन्द किये बैठे ही रहे। प्रभु उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देना चाहते थे, परंतु वे किसी प्रकारसे जग ही नहीं रहे थे। वे ध्यानजनित सुखका अनुभव कर रहे थे, तब श्रीरामजीने उनके हृदयसे अपना श्रीरामरूप हटाकर विष्णुरूप कर दिया, इससे वे आकुल हो गये और उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। श्रीसुतीक्ष्णजीका यही मानस-ध्यान हमारा ध्यान बरबस आकृष्ट करता है और हृदयस्थ आराध्यमूर्तिका ध्यान कराता है, जिसमें मानस-ध्यान करनेवाला प्रत्यक्ष दर्शन भी नहीं करना चाहता—

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥

यह तो हुआ मानसिक ध्यान, अब चलें मानस-पूजाकी ओर, जिसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं—पूज्यश्री नाभास्वामीजी महाराज, जिन्होंने गुरुकृपासे ऐसी गहराईमें जाकर मानस-पूजाकी सिद्धि प्राप्त की थी, जिसकी मिसाल नहीं। घटना है उस समयकी, जब आप अपने श्रीगुरुदेव श्रीअग्रस्वामीजी महाराजकी सेवामें उन्हें बाह्य रूपसे पंखा कर रहे थे। गुरुदेव नेत्र बन्दकर मानस-पूजामें तल्लीन थे और श्रीसीतारामजीको मुकुट धारण करा रहे थे, उसी समय उनके किसी व्यापारी शिष्यका जहाज समुद्रमें डूबने लगा, उसने आर्त होकर पुकारा—'गुरुदेव! रक्षा करो।' गुरुदेव अग्रस्वामीजीके अभ्यन्तरमें जब वह आवाज गूँजी, तबतक शिष्य नाभास्वामीजीने, जो गुरुदेवकी अन्तः मानस-पूजाका दर्शन भी कर रहे थे और शिष्यकी आवाजको भी सुन रहे थे, उन्होंने अपने हाथमें लिये उसी पंखेको रोककर उसी दिशामें दिखा दिया—तूफान रुका, जहाज बच गया। आपने देखा गुरुदेवका हस्तकमल रुक गया और वह मुकुट हाथमें ही रह गया, तब आपने कहा—'गुरुदेव! प्रभुको मुकुट धारण करायें, व्यापारीका जहाज गन्तव्यकी ओर चल दिया है, तूफान रुक गया है।' आचार्यप्रवर श्रीअग्रस्वामीजी महाराज मानस-पूजामें इस अद्‌भुत घटनाक्रमसे चकित हो गये। धीरे-से आपने प्रभुको मुकुट धारण कराया और पूजाकी विधि पूर्णकर नेत्र खोले। हाथमें पंखा लिये शिष्य नाभाको देखा—नाभाजीने मस्तक श्रीचरणोंमें रख दिया। गुरुदेवने पूछा—'नाभा! ये घटना कैसे घटी? व्यापारी शिष्यका जहाज तूफानसे कैसे बचा? और मेरी मानस-पूजाका दिव्य

दर्शन तुम्हें नेत्र खोले हुए कैसे हुआ?'

श्रीनाभाजीने बड़ी विनम्रतासे घटित हुई सम्पूर्ण घटना सुना दी। आपकी कृपासे सब सम्भव हुआ, उसी समय गुरुदेवने आज्ञा दी—'नाभा! तुम्हें यह सिद्धि सन्तोंकी कृपासे प्राप्त हुई है, अत: तुम उन्हींके गुणगानरूपी श्रीभक्तमालजीकी रचना करो।' इस प्रकार यह मानसी-पूजा ही श्रीभक्तमालकी रचनाका आधार बनी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपनी भक्तिरसबोधिनी टीकामें इस प्रकार किया है—

मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै
करत बयार नाभा मधुर सँभार सों।
चढ़्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक आपदा में
कर्‍यौ ध्यान खिच्यो मन छूट्यो रूप सार सों॥
कहत समर्थ गयो बोहित बहुत दूरि
आवो छबि पूरि फिर ढरो ताहि ढार सों।
लोचन उघारि कैं निहारि कह्यौ बोल्यौ कौन!
वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुवार सों॥
अचरज दयो नयो यहाँ लौं प्रवेश भयो,
मन सुख छयो, जान्यो सन्तन प्रभाव को।
आज्ञा तब दई, 'यह भई तोपै साधु कृपा
उनही को रूप गुन कहो हिये भाव को'॥
बोल्यो कर जोरि, 'याको पावत न ओर छोर,
गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को।
कहि समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब,
जिनलै दिखाय दई सागर में नाव को'॥

तात्पर्य यह है कि नेत्र बन्द करके भी मानस-पूजामें अपने इष्टदेवके दर्शनका आनन्द लें और जब सिद्ध हो जायँ तो खुले नयनोंसे भी उनका दर्शन करें। आनन्द-ही-आनन्द है भगवान्‌की उपासनामें।

मानस-पूजाकी सबसे बड़ी विशेषता है कि 'हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाय।' मनमें अपने इष्टका ध्यान करते हुए सुगन्धित जल, गुलाबजल अथवा गंगा, यमुना, सरयूजल—जिससे चाहें स्नान करायें। मनमें कल्पना करें, खूब सुन्दर वस्त्र धारण करायें, तिलक करें, पुष्प-पुष्पमाला चढ़ायें, उस ऋतुमें न होनेवाले पुष्प भी आपको मानसमें मिल जायँगे, कमल, गुलाब, बेला, जूही, चमेली और सुगन्धित पुष्पमाला धारण करायें और तो और अपनी रुचिके अनुकूल धूप, दीप, नैवेद्य अर्पण करें। छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन खिलाइये, कौन-सा आपका पैसा-टका लगना है, पर भावके भूखे भगवान् जमकर पायेंगे, प्रसन्न होंगे। प्रभूत दक्षिणा-द्रव्य निवेदन करिये, जो कभी बाह्य जीवनमें न मिला होगा, ऐसा हीरा-मोती, मूँगा, बहुमूल्य रत्न, सोना-चाँदी, आभूषण समर्पित करिये। आप बाहर भले ही कुछ भी न कर सकें, पर मानस-पूजामें त्रैलोक्यकी सम्पदा अपने प्रभुको निवेदित कर सकते हैं। एक गरीब भी करोड़पतियोंको मात दे सकता है।

परंतु एक शर्त है—बाहर आप मूर्तिपूजा, चित्रपूजा अपने सामर्थ्यके अनुसार पंचोपचार करें, षोडशोपचार करें या राजोपचार करें, किंतु इन सबके साथ मनमें भावना और मानसिक आराधना अवश्य करनी चाहिये, तभी बाह्य पूजा सफल, सार्थक और आनन्ददायी होती है।

मानस-पूजाका यह प्रभाव है—यह चमत्कार है कि बिन बुलाये आपके इष्टदेव आपके सामने प्रकट हो जायँगे किसी भी रूपमें। इसलिये आइये, इस सहज, सरल और बिना श्रमके द्वारा विशेष फल देनेवाली मानस-पूजाको अपनायें, इसीमें निहित है भक्तकी भक्तिमयी भावना—

'तेरे पूजनको भगवान बना मन मंदिर आलीशान।'

भगवत्कृपा—स्वरूप-चिन्तन

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

अशेषजगदापदां पदविलोपलीलामयी
प्रपन्नमधुरोदया भुवनभूषणा चित्कला।
सदैव सुखशेवधिः सुजनजीवनानन्दिनी
हरेर्हृदयहर्षिणी जयति शाश्वती तत्कृपा॥*

भगवत्कृपा भगवान्‌की भास्वती भावमूर्ति है। कृपा और कृपामयमें तात्त्विक अन्तर नहीं है, इसलिये महानुभावोंने ***'प्रभु मूरति कृपामई है'*** कहकर विविध रूपोंमें इसका प्रतिपादन किया है। 'दया', 'करुणा', 'अनुकम्पा' आदि अनेक अभिधानोंके यौगिक अर्थोंके अनुसार इस भागवती कृपाके भी अनेक रूप हैं—पृथक्-पृथक् क्रीड़ाएँ हैं। प्रभु कभी तो अपनी स्वरूपभूता शक्तिसे भक्तको सुख-समृद्धि एवं यशो-वैभव आदि देकर उसे अपने प्रति आस्थावान् बनाते हैं, तो कभी उसकी कठिन परीक्षा लेकर कसते भी हैं—उसे दुःख-दारिद्र्य, अपमान आदि देकर संसारसे विरक्त कर देते हैं, जिससे वह उनकी प्रीतिका ऐकान्तिक पात्र बन जाय। श्रीमद्‌भागवतमें स्वयं उनके ही वचन हैं—

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।

(८।२२।२४)

अर्थात् 'हे ब्रह्माजी! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, (कभी-कभी) उसका धन (सम्पत्ति तथा मान-वैभव आदि अहन्ता-ममतास्पद वस्तुएँ) छीन लेता हूँ।'

अपने पौत्र दानवराज बलिको भगवान्‌के द्वारा श्रीरहित कर दिये जानेपर भक्तराज प्रह्लाद गद्‌गद होकर कहते हैं—

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात्॥

(श्रीमद्भा० ८।२२।१६)

'हे भगवन्! इसको इन्द्रका शक्तिशाली और समृद्ध पद आपने ही दिया था। अतएव भगवत्-प्रसादरूपमें यह शिरोधार्य था। आज आपने उसका हरण कर लिया—यह स्थिति भी उसी प्रकार आदरणीय है। मैं तो इसपर आपकी बहुत बड़ी कृपा मानता हूँ कि आपने इसे आत्मविमोहिनी भौतिक-सम्पत्तिसे मुक्त करके अपना लिया।'

कृपामें लेना-देना दोनों ही होता है। जैसे स्नेहमयी जननी अपने प्रिय लालको कभी कोई वस्तु देती है, कभी कुछ देरके लिये देकर छीन लेती है और कभी रो-रोकर माँगनेपर भी नहीं देती, पर उन सभी स्थितियोंमें शिशुके प्रति उसकी कृपामयी मंगल-दृष्टि ही जागरूक रहती है, उसी प्रकार भक्तके अधिकार और स्तरको देखकर प्रभु भी कभी उसे स्वयं लौकिक-पारलौकिक समृद्धि देकर सत्कृत करते हैं, कभी देकर छीन लेते हैं और कभी माँगनेपर भी नहीं देते। ध्रुव और प्रह्लादको स्वयं श्रीहरि आग्रह करके अचल सम्पत्ति प्रदान करते हैं, यथा ध्रुवके प्रसंग में—

तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरामपि सुव्रत।

(श्रीमद्भा० ४।९।१९)

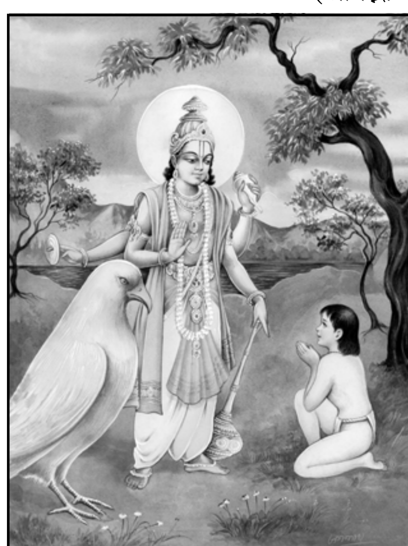

'हे वत्स ध्रुव! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें

* जो सम्पूर्ण जागतिक विपत्तियोंकी सत्ताको लुप्त करनेवाली लीलासे युक्त है, भगवान्‌के प्रति शरणागत हुए जनके जीवनमें माधुर्यका उदय करनेवाली, तीनों लोकोंकी अलंकारभूता, चैतन्यकी एक विशिष्ट कला है। सदा सुखकी निधि और सज्जनोंके जीवनको आनन्दसे भर देनेवाली है, ऐसी चिरन्तन भगवत्कृपा, जो स्वयं श्रीहरिके भी हृदयको हर्षित कर देनेवाली है, सर्वोत्कर्षशालिनी है—उसके प्रति हमारे अनन्त प्रणाम।

अन्योंके द्वारा कठिनाईसे प्राप्त होनेवाला पद दे रहा हूँ।'

इसी प्रकार प्रह्लादजीके प्रति उनके वचन हैं—

अथापि मन्वन्तरमेतदत्र

दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान्।

(श्रीमद्भा० ७।१०।११)

अर्थात् 'हे प्रह्लाद! तुम एक मन्वन्तरतक दैत्योंके स्वामी बनकर मेरे दिये गये भोगोंको भोगो।' बलिको पहले इन्द्रपद प्राप्त कराकर बादमें स्वयं हरण कर लेते हैं तथा माया-मोहित देवर्षि नारदको माँगनेपर भी सुन्दरता नहीं देते और कहते हैं—

कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥

(रा०च०मा० १।१३२।१)

क्योंकि देवर्षिने अपने ऊपर कृपा करनेकी ही प्रार्थना की थी—

करहुँ कृपा करि होहु सहाई।

(रा०च०मा० १।१३२।५)

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सब कुछ दिये रहते हैं, किंतु स्वयं सम्हाले भी रहते हैं—भक्तको इन सबके पा जानेपर भी मोह नहीं होता। यह भी उनका अनुग्रह ही है—

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः।

यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः॥

(श्रीमद्भा० ८।२२।२६)

कृपा वस्तुतः श्रीहरिकी 'स्वजन-सम्पोषिणी' शक्ति है—'**पोषणं तदनुग्रहः**'। (श्रीमद्भा० २।१०।४) इसीके सहारे वे अपने जनकी मातृवत् सुरक्षा-सम्हाल करते हैं—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

(रा०च०मा० ३।४२।५)

कृपाकी अनुभूतिका अधिकार

भगवत्कृपा एक देश या कालमें सीमित नहीं है, यह भगवान्‌के ही समान सार्वकालिक, सार्वत्रिक तथा सार्वजनीन है। वस्तुतः हमारा अस्तित्व ही कृपापर टिका हुआ है। हमारे पुरुषार्थके सब साधन भगवत्कृपा-प्रदत्त ही हैं, अधिक क्या? हमारा यह मनुष्य शरीर भी उसी भागवती कृपाका प्रसाद है। 'सामान्य' अर्थात् भगवत्पराङ्मुख व्यक्ति इस कृपाकी अनुभूति नहीं कर पाते और भगवद्-भक्त इसका अनुभव कर लेते हैं—यही दोनोंमें अन्तर है। कृपा समस्त विश्वको आप्यायित तथा रससिक्त कर देनेवाली अजस्र अमृतवृष्टि है, पर वृष्टिसे सिक्त और रसपूर्ण वही हो सकता है, जो किसी भी आवरणके व्यवधानसे मुक्त होकर उसमें भीगे—उसे सर्वात्मना स्वीकार करनेको प्रस्तुत हो।

कृपानुभूतिकी भी अनेक स्थितियाँ और स्तर होते हैं। जैसे—श्रावण-भाद्रपदकी धारासार वर्षामें भी वे ही घट जलपूर्ण होते हैं, जो खुले आकाशके नीचे सीधे और बिना ढक्कनके रखे हों, साथ ही नीचेसे फूटे न हों। उसी प्रकार भगवत्कृपाकी अनुभूतिका रस भी उन्हीं हृदयोंमें भर सकता है, जो सांसारिक आवरणोंको छोड़ चुके हों—जिन्होंने अपने आपको पूर्णतया अनावृत कर रखा हो, जिनमें अतिशय तार्किकताका उलटापन न हो और जो कृपाको प्राकृतिक संयोग मानकर उसके प्रति महत्त्व-बुद्धिको खो न देते हों, किंतु सब होनेपर भी पहले उन्हें अपने हृदयसे संसारको निकालना होगा, क्योंकि पहलेसे भरे घड़ेमें वर्षा भी कोई नूतनता नहीं ला सकती। अहंकारीको भगवत्कृपाकी अनुभूति नहीं हो सकती। इसलिये भगवान्‌की कृपाका अनुभव करनेके लिये पहले महापुरुषोंकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। महापुरुषों, शास्त्रों या सन्तोंकी कृपा 'आत्मकृपा'के बिना नहीं मिल सकती। अतः उससे पहले हमें अपनी दशापर विचार करके किसी योग्य महापुरुष या शास्त्रकी शरण ग्रहण करनी चाहिये, फिर शनैः-शनैः प्रत्येक परिस्थितिमें भगवत्कृपाको देखनेका अभ्यास होने लगता है। 'आत्मकृपा', 'सन्तकृपा' तथा फिर 'भगवत्कृपा' यही साधनाऽनुभूतिका शास्त्रीय-क्रम है।

तीर्थ-दर्शन—

रामाश्वमेधकी पुण्यभूमि 'नैमिषारण्य'

(डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी)

अत्यन्त पावन श्रीनैमिषारण्यकी पुण्यभूमि 'अष्टम वैकुण्ठ' नामसे प्रशंसित है। पौराणिक कालसे ही इस पुण्यक्षेत्रका धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा पुरातात्त्विक दृष्टिसे विशेष महत्त्व रहा है। वैदिककालीन इस क्षेत्रके अस्तित्वको इतिहासविद् और पुरातात्त्विक विद्वान् ईसासे पाँच हजार वर्ष पूर्वका मानते हैं। 'कूर्मपुराण'के अनुसार नैमिषारण्यका अस्तित्व सतयुगसे है। इस तथ्यकी पुष्टि विभिन्न पुराणों, महाभारत, श्रीसत्यनारायणव्रतकथा, वाल्मीकीय रामायण, आदि अनेक ग्रन्थोंसे होती है। क्षेत्रकी प्राचीनता और पावनताको व्यक्त करनेवाला एक आख्यान शिवपुराणके अन्तर्गत वायवीय-संहिताके तृतीय अध्यायमें आया है, जिसमें मोक्षप्राप्तिविषयक वर्णन है। इस वर्णनमें मुनियोंको उपदेश करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—'मैं एक उपाय बताता हूँ, उस उपायसे एक ही जन्ममें मुक्ति तुम्हारे हाथमें आ जायगी। जो अनेक जन्मोंके संसार-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली होगी। यह मैंने मनोमय चक्रका निर्माण किया है। इस चक्रको मैं यहाँसे छोड़ता हूँ। जहाँ जाकर इसकी नेमि विशीर्ण हो जाय, वहीं तपस्याके लिये शुभ देश है।'—ऐसा कहकर पितामह ब्रह्माने उस तेजस्वी मनोमय चक्रको छोड़ दिया। ब्रह्माजीका फेंका हुआ वह सुन्दर चक्र मनोहर शिलाखण्डोंसे युक्त और निर्मल एवं स्वादिष्ट जलसे पूर्ण किसी वनमें गिरा। उस चक्रकी नेमि शीर्ण होनेसे वह मुनिपूजित वन 'नैमिष-क्षेत्र' नामसे विख्यात हुआ। अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधर वहाँ आकर रहने लगे। पूर्वकालमें, जगत्की सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले विश्वस्रष्टा एवं गार्हपत्य अग्निके उपासक ब्रह्मज्ञ प्रजापतियोंने वहीं दिव्य यज्ञका आरम्भ किया था। वहीं शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने शक्ति, प्रज्ञा और क्रियाके माध्यमसे शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान किया था।

कूर्मपुराणमें नैमिषतीर्थको तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा चारों धामोंका पूरक माना गया है। वामनपुराणकी मान्यता है कि इस पुण्यक्षेत्र नैमिषमें तीस हजार ज्ञात-

अज्ञात, पापविनाशक पुण्यतीर्थ-स्थलोंकी विद्यमानता है। वाराहपुराणमें 'नैमिषारण्य' के नामकरण-विषयक एक उल्लेखमें कहा गया है कि भगवान् श्रीहरिने निमिषमात्र (पलक झपकनेका समय)-में ही इस वनक्षेत्रके दानवोंका विनाश कर दिया था, इसीलिये इस तपोवनका नाम नैमिषारण्य पड़ा। किंतु सर्वग्राह्य है कि ब्रह्माके मनोमय-चक्रकी नेमि विशीर्ण होनेसे सम्बन्धित क्षेत्र 'नैमिषारण्य क्षेत्र'से प्रसिद्ध है। यह घटना सृष्टिके प्रारम्भ (सतयुग)-में घटित होनेसे अधिक पुरातन है। इसके सापेक्ष वाराहपुराण-वर्णित दानवोंका विनाश, द्वापरयुगकी घटना है। यथा—(द्वापरमें) नैमिषके उत्तरी वनमें एक 'बिल्ल' या 'बिलाल' नामक दानव रहता था। वह भगवान् शंकरका परम उपासक था। उसके अत्याचारोंसे त्रस्त वहाँके ऋषियोंने योगिराज कृष्णके अग्रज बलदाऊजीसे प्रार्थना की थी और बलदाऊजीने उस 'बिलाल' नामक दानवका संहार किया था। पुनरपि, इस तथ्यके पूर्व त्रेतायुग और सतयुगमें नैमिषकी तपोभूमिमें विभिन्न प्रकारके यज्ञ होनेके ग्रन्थोक्त प्रमाण भी हैं। इस पवित्र क्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन पद्मपुराण एवं वायुपुराणमें भी प्राप्त होता है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार ब्रह्मज्ञ प्रजापतियों (महर्षियों)-द्वारा उस क्षेत्र (नैमिषारण्य)-में प्रायः दिव्ययज्ञोंके अनुष्ठान हुआ करते थे। ऐसे ही एक दिव्ययज्ञका श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार वर्णन है—

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत॥

अर्थात् 'परम पुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया।' उक्त वर्णनसे नैमिषक्षेत्रकी पुरातनता, पावनता तथा आध्यात्मिक ऋषियोंसे परिपूर्ण क्षेत्रमें धार्मिक अनुष्ठानोंकी निरन्तरता प्रमाणित होती है। त्रेतायुगमें, यहीं वह सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक 'रामाश्वमेध-यज्ञ' सम्पन्न हुआ था, जिसमें प्रथम बार रामकथा-मन्दाकिनीके स्वर प्रवाहित हुए थे और भूमिजा (सीताजी)-के भूमिस्थ होनेकी अलौकिक घटना भी घटी थी। यथा—

यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने॥
आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम्।
शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्तन्तां समन्ततः॥
शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम्।
अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दन॥

(वा०रा० ७।९१।१५—१७)

अर्थात् 'नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर विशाल यज्ञ-मंडप बनानेकी आज्ञा दो; क्योंकि वह वन बहुत ही उत्तम और पवित्र स्थान है। हे महाबाहु रघुनन्दन! (लक्ष्मण!) वहाँ यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये सर्वत्र शान्ति-विधान प्रारम्भ करा दो। नैमिषारण्यमें सैकड़ों धर्मज्ञ पुरुष उस परम उत्तम और श्रेष्ठ महायज्ञको देखकर कृतार्थ हों।'

इस प्रकार अयोध्यानरेश श्रीरामने न केवल यज्ञकी तैयारीके लिये लक्ष्मणको उचित निर्देश दिये, बल्कि यज्ञके घोड़ेकी सुरक्षामें उन्हें नियुक्त किया। वाल्मीकि रामायणके उत्तरकाण्डके ९१-९२ सर्गकी कथामें कहा गया है—'सब सामग्री पूर्णरूपसे भेजकर श्रीरामने उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न तथा कृष्णसार मृगके समान काले रंगवाले एक घोड़ेको छोड़ा। ऋत्विजोंसहित लक्ष्मणको उस अश्वकी रक्षाके लिये नियुक्त करके श्रीरघुनाथजी सेनाके साथ नैमिषारण्यको गये।'

नैमिषारण्यकी यज्ञ-भूमिमें लवकुशद्वारा रामायण-काव्यका गान हुआ था, जिसे श्रीरामने भरी सभामें रुचिपूर्वक सुना था। दूसरे दिन इसी यज्ञ-मण्डपमें सीताजीका रसातलमें प्रवेश हुआ। इस अलौकिक घटनाका वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डके तीन सर्गों (क्रमशः ९५से ९७तक)-में विस्तारसे वर्णन हुआ है।

महाभारतमें भी नैमिषकी कतिपय ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेख मिलते हैं। यथा—'युधिष्ठिरसहित पाँचों पाण्डव नैमिषकी महिमासे प्रभावित होकर यहाँ पधारे थे और पूजन-अर्चन-दान आदि अनुष्ठान पूर्ण किये थे। महाभारतमें उल्लिखित देवर्षि नारदद्वारा वर्णित 'भीष्म-पुलस्त्य-संवाद' के अनुसार—'जो यात्री नैमिषको चल पड़ता है, उसका आधा पाप नष्ट हो जाता है तथा वहाँ पहुँचनेपर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पृथ्वीके समस्त तीर्थ 'नैमिष-तीर्थक्षेत्र' में ही स्थित हैं। लोकमान्यता भी है

कि चारों धामकी यात्रा नैमिषमें आनेके पश्चात् ही फलवती होती है।'

गोस्वामी तुलसीदासप्रणीत 'श्रीरामचरितमानस'के अनुसार यही वह पवित्र, सिद्धिप्रदायक विष्णुमय तीर्थ है, जो श्रीरामजन्ममें हेतु हुआ। प्रसिद्ध है कि मनुष्योंकी अनुपम सृष्टिके जनक स्वायम्भुव मनु और उनकी महारानी शतरूपाने इसी पवित्रभूमि नैमिषारण्यमें, प्रारम्भके सतयुगमें अपनी कठोर तपस्यासे श्रीहरि विष्णुके मनोरम दर्शन किये थे। इसी देवभूमिपर भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें वरदान देते हुए कहा था, 'हे तपोदम्पती! अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्रपुरीमें विहार करो। अनन्तर कुछ काल पश्चात् (त्रेतायुगमें) तुम्हारे अवधनरेश होनेपर मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें अवतरित होऊँगा।' यथा—

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥
तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥

(रा०च०मा० १। १५१। ८, १। १५१)

एक पौराणिक आख्यानके अनुसार—भगवान्‌के अंशावतार नर और नारायण अपनी मातासे तप करनेका वरदान प्राप्त करके नैमिषारण्यतीर्थमें तपस्या करने लगे। वहीं पाताललोकके राजा भक्तशिरोमणि प्रह्लाद भी तीर्थ-सेवनहेतु नैमिषारण्य पधारे। उन्होंने स्नान, दान किया तथा कुछ दिनोंतक सत्संगका लाभ उठाया। एक दिन घूमते हुए वे नर-नारायणकी तपस्यास्थली पहुँच गये। अनन्तर कुछ विवाद होनेसे प्रह्लादजी और भगवान् नर-नारायणके मध्य अनिर्णायक युद्ध हुआ।

प्राचीनकालमें दक्षिण भारत (विशेष रूपसे तमिलनाडु) कई भगवद्-भक्तों एवं आचार्योंका अवतार-स्थल रहा है। इन पूज्यभक्तोंमें १२ वैष्णव-भक्त 'आलवार' (दिव्यसूरि)-के नामसे विख्यात हैं। आलवारोंके द्वारा भारतमें मंगलाशासित दिव्य-क्षेत्र १०८ हैं, जिनमें नौ उत्तर-भारत में हैं। इन नौ दिव्य-क्षेत्रोंमेंसे एक 'नैमिषारण्यम्' (नीमसार) है। वैष्णवभक्त आलवार नैमिषारण्यमें भगवान्‌को अरण्यरूपमें विराजमान मानकर उनकी पूजा करते हैं। उनके अनुसार—'यहाँके भगवान् देवराजन (आरण्य) और माता श्री हरिलक्ष्मीजी हैं। महालक्ष्मीके पुरुषकारत्व (सिफारिश)-को लेकर शरणागति करना ही जीवका स्वरूप माना जाता है।' एतत् आलवर भी महालक्ष्मीके पुरुषकारत्वमें यहाँ विराजमान भगवान्‌के श्रीचरणोंमें शरणागति करते हैं। इस हेतु वे दस दिव्य-पदोंमें अपने दोषोंको प्रकट करते हुए अपनी रक्षाकी प्रार्थना करते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिसे नैमिषारण्यकी पुण्यभूमि वेदों और पुराणोंकी रचना-भूमि रही है। पुराणप्रतिपादित संस्कृतिकी जननी इस तपोभूमिके अतीत परिदृश्यमें, इतिहासकी अनेकों शृंखलाएँ सम्पृक्त हैं। महर्षि द्वैपायन, वेदोंका यहींपर सम्पादनकर 'वेदव्यास'की उपाधिसे अलंकृत हुए। उन्होंने वेदोंको चार भागोंमें विभाजित किया। उनके द्वारा उनकी साधना-स्थली (व्यासमन्दिरस्थित व्यासपीठ)-से अट्ठारह पुराणोंकी रचना—नैमिष क्षेत्रकी अपूर्व घटना है। वर्तमानमें, पवित्र नदी गोमतीके तटपर व्यासमन्दिर (व्यासगद्दी) अद्यतन विद्यमान है। जिसके समीप घनी छायायुक्त अतिप्राचीन विशालकाय वट-वृक्ष है, जिसके नीचे वैदिक ऋचाओं, पुराणों और महाभारतसदृश महाकाव्यने जन्म लिया था। महर्षि सूतजीने शौनक मुनिको यहींपर अट्ठारह पुराणोंकी कथा सुनायी थी। महर्षि शौनक मुनिके आचार्यत्वमें लोककल्याणार्थ अट्ठासी हजार ऋषियोंका प्रथम धर्मसत्र यहीं सम्पन्न हुआ था तथा लाखों ऋषियोंने महर्षि शौनकमुनिके कुलपतित्वमें, नैमिष-भूमिपर प्रथम विश्वविद्यालयसे ज्ञान-दान पाया। घर-घर श्रद्धापूर्वक होनेवाली श्रीसत्यनारायणकी कथाका प्रारम्भ भी यहीं नैमिषसे हुआ है—

'एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादया।
पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु·····।'

पुण्यभूमि नैमिषमें अजस्र जलस्रोतके रूपमें पवित्र 'चक्रतीर्थ' सरोवर स्थित है। जिसका पावन-माहात्म्य विदेशोंतक छाया है। इस पवित्र-सरोवरमें भारतके दूरस्थ प्रदेशोंके लोग भी पुण्यस्नान-लाभहेतु नैमिष पधारते हैं। प्रत्येक अमावस्याको यहाँ विशाल मेला लगता है। मौनी अमावस्या अथवा सोमवती अमावस्यापर तो यहाँ जैसे जन-समुद्र ही उमड़ पड़ता है। पवित्र चक्रतीर्थके तटपर अनेक मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिरोंमें भगवान् भूतनाथ महादेवका मन्दिर तथा इससे दो फर्लांग दूर उत्तर-पूर्वकी

दिशामें माँ ललितादेवीका मन्दिर है। भगवान् भूतनाथ महादेवकी यहाँ पर्याप्त महिमा है तथा माँ ललिता देवीकी महाशक्तिके रूपमें आज भी मान्यता है। लोकप्रचलित है कि भगवती सतीके शवसे उनका हृदय च्युत होकर इसी स्थलपर गिरा था। संस्कृत साहित्यमें माँ ललितादेवीकी अद्वितीय महिमा वर्णित है, जिसे सुनकर अगस्त्यमुनि धन्य हो उठे थे। मन्दिरके द्वारपर स्थित 'पंच-प्रयाग' सरोवर है।

नैमिषकी पवित्र भूमिमें—गोवर्धन महादेव, जानकी कुण्ड, देव-देवेश्वर महादेव, सिद्धधामके रूपमें स्थित हैं। नगरमें अनेक मन्दिर और तीर्थ स्थित हैं। यथा—हनुमानगढ़ी, नृसिंह मन्दिर, धर्मराज मन्दिर, शुकदेवस्थल, गंगोत्री, पुष्कर-तीर्थ, गोदावरी आदि गंगा, दशाश्वमेध टीला, पाण्डव किला, रामजानकीस्थल, ब्रह्मावर्ततीर्थ, आर्यावर्ततीर्थ, पुराण मन्दिर, रामानुज कोट, माँ आनन्दमयी-पीठ तथा वैदिक एवं पौराणिक अनुसन्धान संस्थान सहित अनेक संस्कृत विद्यालय हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि भारतके प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम (सन् १८५७ ई०की क्रान्ति)-में प्रमुख क्रान्तिकारी नाना साहेब पेशवाने अपने अन्य साथी धोड़ूँ पन्त आदिके साथ नैमिषमें भूमिगत होकर स्वतन्त्रता-आन्दोलनकी योजनाओंका संचालन किया था।

नैमिषारण्यक्षेत्र, जनपद सीतापुरकी तहसील 'मिश्रिख'के अन्तर्गत है। लोककल्याणार्थ सर्वस्व दान करनेवाले, परम शिवभक्त महर्षि दधीचिकी साधना-स्थली 'मिश्रिख', नैमिष नगरसे १० कि०मी० (पूर्व)-की दूरीपर स्थित है। पौराणिक आख्यानोंके अनुसार ब्रह्माके पौत्र तथा अथर्वाके पुत्र दानी दधीचिका नामकरण, उनकी माता 'दधिष्मती' (लक्ष्मी)-के नामरूपेण 'दधीचि' हुआ था। वे शास्त्रकार एवं यजुर्वेदके मन्त्रद्रष्टा माने जाते हैं। लोकहितार्थ मिश्रिख (तपस्थली)-में ही महर्षि दधीचिने वृत्रासुर-वधहेतु अपनी अस्थियोंका दान किया था। अस्थिदानसे पूर्व सभी देवताओंने महर्षि दधीचिके स्नानहेतु सभी तीर्थोंको 'दधीचि-सरोवर'में प्रतिष्ठित किया था। इसीसे 'दधीचि कुंड' स्थित मिश्रित-महातीर्थोंके कारण, 'मिश्रित' किंवा 'मिश्रिख' तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। मिश्रिख नगरमें स्थित 'दधीचि-समाधि'का भव्य-मन्दिर एवं 'दधीचि गद्दी' सुविख्यात है।

अनन्तकालसे सुप्रसिद्ध नैमिषारण्यतीर्थकी चौरासी कोसी परिक्रमा प्रत्येक फाल्गुनमासकी प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर फाल्गुन पूर्णिमाको सम्पन्न होती है। हजारों श्रद्धालु एवं सुदूर प्रान्तोंसे आये सन्तजन इस परिक्रमामें भाग लेते हैं। वामनपुराणके आधारपर उक्त परिक्रमा क्षेत्र—गोमती कांचनाक्षी और गुरुदाके मध्य हजारों तीर्थसहित स्थित है। एतत् इसकी परिधिमें सीतापुर और हरदोई जनपदके भू-भागसहित, नेपाल राष्ट्रकी सीमापर्यन्त भू-भाग स्थिर होता है। किंतु वर्तमानमें ये क्षेत्र हरदोई-सीतापुरके चौरासी कोसके भू-भागमें आते हैं। नैमिषारण्य-तीर्थकी परिक्रमा, वस्तुतः आध्यात्मिक-परिक्रमा है, जो इस क्षेत्रमें अठासी हजार ऋषियोंकी तपस्थलीका वन्दन एवं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामद्वारा पूर्वमें की गयी परिक्रमाका स्मरण है। श्रद्धालुजन 'रामदल'से सम्बोधित होकर अत्यन्त पवित्र भावसे नैमिषारण्यके चतुर्दिक् परिक्रमा करते हैं। यह परिक्रमा एक पक्षमें सम्पूर्ण होती है। परिक्रमा-परिधिमें अनेक तीर्थोंके दर्शन होते हैं। लोकप्रचलित है कि जिस समय देवराज इन्द्रने समस्त तीर्थोंका आवाहन नैमिषक्षेत्रमें किया था, तो समस्त तीर्थ अपने स्थानोंपर प्रकट हुए, उस समय महर्षि दधीचिने जिस मार्गसे चलकर उन समस्त तीर्थोंके दर्शन किये और स्नान एवं विश्राम किया था, वही मार्ग एवं पड़ाव-स्थल—परिक्रमाका मार्ग एवं पड़ाव-स्थल है।

एकादश पड़ावोंमें क्रमशः कोरावन, हर्रैया (हरिहर क्षेत्र), नगवा-कोथावाँ, गिरधरपुर, उमरारी, साक्षी गोपालपुर, देवगवाँ, मड़रुआ, जनिगाँव, नैमिषारण्य, कोलहवा, बरेठी तथा मिश्रिख हैं। एकादश पड़ाव या विश्राम-स्थल, आध्यात्मिक अर्थोंकी ओर भी संकेत करते हैं। मानव-शरीरस्थ एकादश इन्द्रियाँ, जीवन-परिक्रमाके ऐसे पड़ाव हैं, जहाँ स्थिर होकर उन्हें क्रमशः जय करना ही अभीष्ट होता है। अर्थात् योग-सिद्धिहेतु 'इन्द्रिय-जय' प्रथम सोपान है। परिक्रमणके ये एकादश पड़ाव, उनमें स्थित तीर्थ और उनके माहात्म्य सर्वथा अलौकिक प्रभावयुक्त हैं।

पाप और पुण्य

(श्रीअर्जुनजी पंजाबी)

महर्षि वेदव्यासने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। उनके द्वारा रचित श्रीमद्भागवत मनुष्यमात्रके लिये न केवल 'जीवन' बल्कि 'मृत्यु' की सार्थकताका सन्देश है। सात दिन बाद मृत्यु है, यह जाननेके बाद भी कोई कैसे शान्त रह सकता है? मृत्युका वरण कैसे हो, यह भागवतजीका बड़ा सन्देश है। एक बार नारदजीने महर्षि वेदव्याससे यह प्रश्न किया कि इस महापुराणको कोई न पढ़े, तो साररूपमें उसके लिये आपका सन्देश क्या है? तब महर्षि वेदव्यासने सार संदेश कहा—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

दूसरेका हित-चिन्तन ही पुण्य और दूसरेको पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। अगर कोई अठारह पुराण न पढ़े तो यही वचन उसके जीवनको निर्मल बना देनेके लिये बहुत है। रामायण हो या भागवतजी—सबका मूल सन्देश एक ही है, वह है परोपकार। नानक हो या कबीर, रहीम हो या १५वीं शताब्दीके भक्त नरसिंह मेहता—सबने यही कहा कि 'परोपकार' यदि किसी मनुष्यमें उतर जाय तो वह समझिये सारे तीर्थ कर चुका, सारे ग्रन्थ पढ़ चुका। उसी तरह जिसका उद्देश्यमात्र दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना है, वह किसी बड़े हत्यारेसे भी बड़ा पापी है; क्योंकि '**पापाय परपीडनम्**'।

हमारे दूसरे महाग्रन्थमें भी तुलसीदासजीने यही तो कहा—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

परहितसे बड़ा कोई धर्म नहीं है और दूसरेको पीड़ा पहुँचानेसे बड़ा नीच कर्म नहीं है। परोपकारको जहाँ बड़ा पुण्य कहा गया, वहीं दूसरेको पीड़ा पहुँचाना अधम कहा गया है। धार्मिक हो जानेके लिये बड़े ज्ञान या शास्त्र अथवा मन्दिरकी राह जानेकी भी जरूरत नहीं है, ये 'वचनद्वयम्' ही जीवनमें उतारने होंगे। कबीरने भी यही कहा—

कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥

दूसरोंकी पीड़ा समझना, उसे हरना ही धर्म है, साथमें यह कहा गया ***'जो पर पीर न जानई'*** वह काफिर है और बेपीर है।

'परपीडनम्' की बात कबीरद्वारा भी कही गयी। परोपकार यदि नहीं है तो पुण्य नहीं है, किंतु यदि इसके विपरीत आचरण है तो उसका कर्म अधम है—वह पाप है—वह काफिर बेपीर है; क्योंकि हमारे धर्मका मूल ही 'दया' है—

दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप।
जहाँ क्षमा तहँ धर्म है, जहाँ दया तहँ आप॥

कबीरने परमार्थके लिये यहाँतक कहा कि जो दूसरोंकी मदद कर रहा है, दूसरोंके काम आ रहा है, भगवान् उससे दौड़कर मिलते हैं।

परमारथ हरि रूप है, करो सदा मन लाय।
पर उपकारी जीव जो, सबसे मिलते धाय॥

परमार्थको स्वाभिमानसे भी जोड़ते हुए कबीरने कहा, परमार्थके लिये मैं सब करनेको तैयार हूँ।

मरूँ पर माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज॥

परोपकारकी उत्पत्ति 'करुणा' से है। परोपकारकी सीख हमें प्रकृतिसे सहज मिल रही है। सूर्य-चन्द्र-आकाश-वायु-पृथ्वी-अग्नि-जल-पेड़ आदि सहज ही मानव-कल्याण कर रहे हैं। कहा जाता है कि 'छीनकर खानेवालोंका कभी पेट नहीं भरता और बाँटकर खानेवाला कभी भूखा नहीं मरता।' परोपकार प्रकृतिकी तरह सहज होना चाहिये। अर्थात् शरणमें आये मित्र-शत्रु-कीट-पतंग-बालक-वृद्ध सभीके दुखोंका निवारण निष्काम भावसे करना परोपकार है। यह सहजता प्रकृतिकी तरह हो—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

मनुष्यके साथ यह बड़ा विरोधाभास है कि वह पुण्यके सुखद फलकी कामना करता है, किंतु पुण्यकर्म नहीं करना चाहता '**पुण्यस्य फलमिच्छन्ति नेच्छन्ति पुण्य मानवाः**।' इसी तरह वह पापके फलको भोगनेसे

बचता है। किंतु बड़ी चतुराईसे पाप-कर्म करता रहता है। '**पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः**'।

हम यदि धर्म-अध्यात्म-शास्त्र-मन्दिर-पूजापाठकी डगरपर न चल सकें तो अठारह पुराणोंके रचयिता वेदव्यासने '**परोपकाराय पुण्याय**' कहकर इसे बहुत सहज, सरल बना दिया है और महात्मा गांधीने जीवनभर इस डगरपर चलकर उसका उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है—

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे॥

सच्चा वैष्णव वह है, जो दूसरोंकी पीड़ा समझता हो और साथ ही यह भी कि जब वह उपकार करे तो अपने मनमें कोई अभिमान न आने दे।

भक्त नरसिंह मेहताने १५वीं शताब्दीमें यह भजन उपकारकी महिमापर गाया। परोपकारकी सम्पूर्णता, पवित्रता इस भजनमें है। तभी यह भजन महात्मा गांधीकी हर सभामें गाया जाता था। भक्त नरसिंह मेहताका यह भजन मूलतः गुजरातीमें है, किंतु मानवमात्रके लिये जीवनके एक सहज दर्शन 'वैष्णव जन वही है जो पराई पीरको समझे' को व्यक्त करता है।

महात्मा गांधीने आजीवन इस भजनको आत्मसात् किया, जो प्रकृतिके सहज धर्मकी व्याख्या करता है। कबीरदासजी इस सहज धर्मको वृक्षके उदाहरणसे निरूपित करते हुए कहते हैं—

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर॥

इसी तथ्यको रहीमने भी अपने शब्दोंमें इस प्रकार कहा है—

तरुवर फल नहि खात है, सरवर पियत न पान।
कहि रहिम पर काज हित, संपति सचहिं सुजान॥

परोपकार करनेमें जहाँ अभिमान और दिखावाका निषेध है, वहीं परोपकार करनेमें स्वार्थ—अपना-पराया-मित्रता आदिका भी सोच न हो। राजा शिबिने कबूतरकी प्राणरक्षाहेतु अपने शरीरका मांस और दधीचिने देवहितमें अपनी हड्डियाँ दानमें दे दी थीं। रहीमजी कहते हैं—

रहिमन पर उपकार के करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने दीन्हो हाड़ दधीच॥

दरअसल किये गये उपकारकी पवित्रता इसी बातपर है कि उपकारका दम्भ न आये। उपकार जताया न जाय। उसे खुद प्रचारित न किया जाय। शायद इसलिये ही कहा गया ***'नेकी कर दरिया में डाल'*** या यह कि दान वह है, जो एक हाथ से किया जाय और दूसरा हाथ न जान सके। यहाँ कवि रहीमकी यह पंक्ति उपकारकी पवित्रताका बड़ा सन्देश है—

देनहार कोई और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पे करें तासे नीचे नैन॥

परोपकारके लिये जीवनकी नश्वरताको इंगित कर कबीरने जो कहा—वह दिशा देनेवाला सन्देश है। सरल सहज और प्रेरक है—

धन रहै न जीवन रहै, रहै न गाँव न ठाँव।
कबीर जग में जस रहै, करिलै आपन नाँव॥

कबीरकी इस वाणीमें जीवनकी नश्वरता और नश्वरताके बावजूद सार्थकताका महान् सन्देश छिपा है।

एक संस्कृत कविका कथन है—

रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नै-
विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

अर्थात् समुद्रको अपने रत्नोंका क्या उपयोग? विन्ध्याचलको उसके हाथियोंका क्या काम? मलयाचल पर्वतको चन्दनका क्या उपयोग? सत्पुरुषोंका जन्म परोपकारके लिये ही होता है।

आदिकवि वाल्मीकि जिनके लिये कहा गया— ***वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।*** आह अर्थात् करुणा और करुणा है तो है 'परोपकार'। इसलिये बड़े शास्त्रज्ञानकी, वेदज्ञानकी जीवनमें उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि हृदयकी निर्मलता, पवित्रता और संवेदनशीलताकी। महर्षि वेदव्यासने अष्टादश पुराणोंका जो सार कहा, वह आज भी प्रासंगिक है और वही गूँजना चाहिये अन्तर्मनमें '**परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।**'

संत-चरित—

अद्‌भुत सन्त शिवकोटि

(पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलंग, वेद-काव्यतीर्थ)

यद्यपि वर्तमानकालमें चारों ओर सदाचारका ह्रास ही देखनेमें आता है, तथापि यत्र-तत्र महापुरुषोंके भी दर्शन हो जाते हैं। सौभाग्यवश हमारे देशमें ऐसे महानुभाव अब भी विद्यमान हैं, जो भगवान्‌पर अटल विश्वास होनेके कारण समय आनेपर अपने जीवनको घोर-से-घोर संकटमें डालनेमें भी आगा-पीछा नहीं सोचते। आज ऐसे ही एक महात्माका परिचय 'कल्याण' के पाठकोंको कराया जाता है।

निजाम-रियासतके 'वरंगल' (एकशिलानगर) नामक सुप्रसिद्ध जिलेमें 'जनगाम' स्टेशनके निकट 'लिंगम्पल्ली' नामक एक छोटा-सा गाँव है; वहाँ 'शिवकोटि वीरभद्रय्या' नामके एक गरीब गृहस्थ सज्जन हो गये हैं। ये सज्जन कुछ विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। मातृभाषाकी मिडिलतककी पढ़ाईके बाद माता-पिताके आज्ञानुसार विवाह किया और एक पाठशालाके अध्यापक होकर गृहस्थी चलाने लगे। बाल्यकालसे ही ज्ञान, वैराग्य, सत्संग आदिमें इनकी पूर्ण प्रीति थी। इनकी भाँति इनके बाल-बच्चे भी सदाचारी और भगवद्भक्त थे; परंतु अपने ग्रामवासियोंकी दृष्टिमें ये खटकते थे। उन्हें इनका यह सब ज्ञान-वैराग्य कोरा ढोंग प्रतीत होता, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह वहाँ टिक नहीं सके। दो-तीन वर्षमें ही पाठशाला छोड़-छाड़कर अपने गाँवके निकटवर्ती पहाड़पर जाकर कोई अनुष्ठान करने लगे; परंतु वहाँ उनका रहना न हो सका। वहाँ लोकप्रियता उनके मार्गमें बाधक हुई। कुछ ही महीनोंमें उनकी महिमा चारों ओर फैल गयी, पहाड़में भी लोगोंका ताँता लगने लगा। परंतु परमार्थ-पथके सच्चे पथिकको यह सब कहाँतक रुचिकर हो सकता है! आखिर उन्होंने उससे ऊबकर फिरसे गाँवमें ही प्रवेश किया; और वहीं रहकर चार वर्ष शिव-भक्तिका प्रचार करते रहे। जहाँ जाते वहीं 'शिव-भजन-संघ' की स्थापना करते। गरीबोंको अन्न आदि बाँटनेकी व्यवस्था भी कराते। आपको शिवजीमें, विशेषकर श्रीवीरभद्रमें बड़ी श्रद्धा थी। आपको यह आशा थी कि निकट भविष्यमें श्रीवीरभद्रजी अवतार धारणकर दुष्टोंका अवश्य दमन करेंगे। आपके अन्दर अनेक चमत्कार देखनेमें आये। उदाहरणार्थ, आपने अपने ग्राममें एक सुन्दर शिवालयकी स्थापना की, जिसमें कोई साठ-सत्तर हजार रुपये खर्च हुए होंगे। भगवान् जाने, इतना रुपया एक गरीबके हाथ कहाँसे लगा! साथ ही एक विशेष बात यह भी थी कि सब कुछ होनेपर भी उनकी अपनी झोंपड़ी ज्यों-की-त्यों बनी रही। अन्न-वस्त्रका भी पूर्ववत् अभाव-सा ही रहा।

श्रीशिवकोटि वीरभद्रय्या स्वामी एक अद्भुत मेधावी और विलक्षण व्यक्ति थे। बिलकुल साधारण पढ़े-लिखे होनेपर भी, आपने स्वतन्त्र विद्याभ्याससे पुराण और तन्त्रशास्त्रमें अच्छी योग्यता प्राप्त की। उन्हें अपने प्रान्तमें जो श्रेय मिला, उसका एकमात्र कारण उनका स्वरचित 'शिवकोटि' नामक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें 'कल्याण' के करीब डबल साइजके प्रायः सौ पृष्ठ होंगे; जिनमें शिव-सम्बन्धी चित्र चित्रित हैं। खूबी यह है कि सरसरी नजरसे उन चित्रोंमें अन्य चित्रोंकी भाँति अनेक बहुरंगी रेखाएँ और बेल-बूटे ही दिखायी पड़ेंगे, परंतु ध्यानपूर्वक देखनेसे पता लगेगा कि उनमें कोरी रेखा एक भी नहीं है, बल्कि वे सब-की-सब रेखाएँ वास्तवमें अक्षर (तेलगु-लिपिके) हैं।*

हाथ, पैर, नाक, कान, आँख, वस्त्राभूषण आदि सभी कुछ यहाँतक कि सिर और पलकोंके बाल भी अक्षरोंसे ही तैयार हुए हैं और विशेषता यह कि यह सब

* भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीरामजीके चित्र नागरी-अक्षरोंमें हैं।

होनेपर भी चित्रकलाकी दृष्टिसे चित्रोंकी सुन्दरतामें कोई कमी नहीं आयी है। उदाहरणार्थ, पुस्तकके प्रारम्भमें ही गणेशजीका बड़ा सुन्दर चित्र बना है। उसके चारों ओर बार्डरमें बेल-बूटेकी भाँति श्रीगणेशजीकी पुराण-वर्णित उत्पत्ति-कथाएँ भी विस्तारपूर्वक चित्रित हैं। बीचमें जो गणेशका चित्र है, उसमें सम्पूर्ण गणेशसहस्रनाम अंकित है। चित्रकारने यहाँतक बुद्धिमत्ता दिखलायी है कि कान, दाँत, पेट आदि प्रत्येक अंगमें यथाविधि 'शूर्पकर्णाय नमः' 'एकदन्ताय नमः' 'लम्बोदराय नमः' इत्यादि लिख दिये गये हैं। शिवजीकी पचीस लीलाएँ, द्वादश-ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भूलिंग, काशीखण्ड और शिवपुराणकी मुख्य घटनाओं आदिके चित्र भी बहुत सफाई और बारीकीसे अंकित किये गये हैं। भगवत्कृपासे उनकी तूलिका भी इतनी नपी-तुली चलती थी कि चित्रोंमें कहीं भी कोई ऐसा स्थान नही मिलता, जहाँ एकबार रबरसे मिटाकर पुनः बनानेका चिह्न मालूम होता हो। आरम्भमें आपने बड़ी सुन्दरताके साथ शिवजीके एक करोड़* नाम लिखे थे, जिससे आपके नामके पीछे 'शिवकोटि' पदवी लग गयी। उसके बाद आपने दस-बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे उपर्युक्त अद्भुत ग्रन्थ तैयारकर अपनी 'शिवकोटि' पदवीको सार्थक कर दिया।

शिवकोटि एक अत्यन्त अद्भुत ग्रन्थ है। सिकन्दराबाद (दक्षिण)-के यूरोपियन अधिकारियोंने एकबार चार-पाँच हजार रुपये पुरस्कारस्वरूप प्रदानकर इसे खरीद लेनेकी इच्छा प्रकट की थी; परंतु श्रीवीरभद्रय्याजीने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि मैं तो इसे श्रीशिवजीके चरणोंमें अर्पित कर चुका हूँ; उसपर अब मेरा उतना ही अधिकार है, जितना देवमूर्तिपर पुजारीका। कितने परले सिरेके स्वार्थत्याग और समर्पणका भाव है! वास्तवमें तो यह ग्रन्थ इस योग्य है कि इसके एक-एक चित्रके ब्लाक बनाकर उससे विचित्र चित्रावली तैयार की जाय। इस विशाल भारतवर्षमें पुण्यात्माओंकी संख्या मेरी समझसे कम नहीं है। दस-बीस हजार रुपया ऐसे कार्यके लिये खर्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई शिवभक्त इसके लिये तैयार हो जाय तो काम हो सकता है। परंतु बड़े खेदकी बात है कि शिवकोटि वीरभद्रय्या अल्पायुमें मात्र चालीस वर्षकी उम्रमें ही शिवलोक सिधार गये!

जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्

(प्रो० श्रीकृष्णाबिहारीजी पाण्डेय)

टेर भक्त की सुनी, देर ना लाये हैं भगवान्, जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्॥ टेक॥

हाथ लिये तलवार, जिस घड़ी हिरनाकुश है आया, कहाँ तेरा भगवान् बता, प्रह्लाद ने खम्भ दिखाया,
खम्भ से निकले, अपना वचन निभाये हैं भगवान्, जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्॥ १ ॥

मुनि मतंग ने बता दिया था, शेबरी राह निहारे, आयेंगे भगवान्, एक दिन इस दुखिया के द्वारे,
जूठे बेर खिलायी, हँस-हँस खाये हैं भगवान्, जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्॥ २ ॥

भरी सभा में दुष्ट दुःशासन, खैंच रहा है सारी, हाथ जोड़कर, द्रुपदसुता ने सुमिरा कृष्णमुरारी।
आसमान से अमित चीर बरसाये हैं भगवान्, जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्॥ ३ ॥

क्रोध में पागल राना ने, भेजा है विष का प्याला, भक्त की खातिर प्रभु ने, विष को ही अमृत कर डाला।
प्रेम दीवानी मीरा को, बचाये हैं भगवान्, जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्॥ ४ ॥

* इस तरह 'शिवकोटि', 'रामकोटि' लिखनेकी प्रथा बहुत कालसे दक्षिणमें जारी है।

समस्या और समाधान

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

किसी भी समस्याका जन्म बादमें होता है, जबकि समाधान उससे पूर्व ही विद्यमान रहता है। दुनियामें ऐसी कोई समस्या नहीं, जिसका समाधान न हो, कोई ऐसा प्रश्न नहीं, जिसका उत्तर न हो। बस अन्तर मात्र इतना है कि वह समाधान, वह उत्तर हमारे संज्ञान में आ सका कि नहीं आ सका। यदि आ गया तो हमारी बुद्धिने उसे स्वीकारा कि नहीं। हमको लगता है कि मंजिलें (लक्ष्य) बादमें तय हुईं, उनको प्राप्त करनेके मार्ग पहलेसे ही हैं, बस उन राहोंपर सुविधाओंका समायोजन बादमें होता है। जैसे—श्रीबदरीनाथ जानेके लिये व्यक्ति १००० साल पहले भी जाते थे, (शास्त्रप्रमाणसे) १०० साल पहले भी जाते थे। २० वर्ष पहले जो लोग गये, वे ही अब कहते हैं कि अब रास्तोंमें तथा श्रीधाममें बहुत बदलाव आ गया। एक बात याद रखना, राहें बदलती रहती हैं, कभी मंजिलें नहीं बदला करतीं।

राह क्या है ? जहाँसे चलकर आप गन्तव्यतक पहुँचें, वही तो राह है। गन्तव्य पानेके लिये आप मानित पथका आश्रय लें अथवा स्वयं पथका निर्माण करें। भाई ! समस्या हमारी सोचकी उपजमात्र है। सकारात्मक सोच हर समस्यामें भी (प्रतिकूलतामें भी) समाधानपरक चिन्तनके कारण आगे बढ़नेके उपाय खोज लेती है, जबकि नकारात्मक सोच समाधानके पलोंको भी समस्या-परक चिन्तनके कारण जटिल बना लेती है। किसी भी व्यक्तिको, वस्तुको, स्थानको, स्थितिको, घटनाको, परिणामको उसके मौलिकरूपमें समझनेकी कोशिश करें, उसे सहजतासे लें और तदनुरूप व्यवहार करें तो समस्या आ ही नहीं सकती। बिच्छू या सर्पको उनके स्वभावानुरूप समझकर आत्मरक्षाके उपायोंपर विचार करें न कि उनके जहरीलेपन तथा दुःख देनेकी प्रवृत्तिपर ही अटके रहें। कुत्ता, घोड़ा, गधा, सिंह, हाथी आदि प्राणियोंकी प्रवृत्ति समझमें आ गयी तो आपको कभी किसीसे गिला-सिकवा न रहेगा अर्थात् मनुष्योंमें भी कम अथवा अधिक मात्रामें जन्मान्तरीय संस्कारवश यह पशुत्वके गुण छिपे रहते हैं, कभी उनकी झलक चेहरेसे दिखती है, कभी चेष्टाओंसे, कभी व्यवहारसे, कभी प्रवृत्तिसे, जो जिस प्रवृत्तिका है उनको सहजतामें ले, स्वयंका बचाव करके ही समाजका उपकार किया जा सकता है। जो स्वयं तैरकर प्राण बचानेकी क्षमता रखता है, वही दूसरोंकी जान भी बचा सकता है। जो बेचारा स्वयं तैरनेमें अक्षम है, वह डूबते हुएको बचानेके लिये शोर तो मचा सकता है, परंतु स्वयं नहीं बचा सकता। किसी भी परिस्थितिको देखकर उद्विग्न हो जाना, खिन्न हो जाना, बिखर जाना, हताश हो जाना, क्रुद्ध हो जाना, रोने लगना समस्या है और शान्त गम्भीर होकर कारणकी तहमें जाकर उपाय सोचना, आगे बढ़ जाना ही समाधान है। जितनी भी दुनियामें दुर्घटनाएँ होती हैं (मेलेमें, सिनेमाघरमें, सत्संगमें, शार्टसर्किटसे, पुल टूटनेसे, आग लगनेसे, सर्प आनेसे, हाथीके बिगड़नेसे, साड़ी या रुपया लूटनेसे), आप गम्भीरतासे विचार करें तो पायेंगे कि ये सब व्यर्थकी अफवाहसे उठी हताशावश सिरपर पाँव रखकर मची भगदड़के कारण होती है। मेरठके उपहार सिनेमाहालमें आग लगी, किसी भी भले इंसानने साहस करके कनेक्शन काटनेकी बात न सोची, बस आग लग गयी, मर गये, हाय-हाय करना, रोना, चीखना, चिल्लाना और भाग पड़ना, यही हुआ। आग लगनेसे दो-चार मरते, भगदड़में सैकड़ों मारे गये बेचारे। सब शान्त रहते, कोई समझदार बिजली कनेक्शन काट देता, लगी आगको बुझाता, तब ये घटना इतनी विकराल न होती। कुम्भ मेलेकी दशा हमारी आँखों देखी है, बिना किसी कारणके अफवाहवश लोग यह सुनकर कि पुल टूट गया, उलटे भागने लगे। जबकि पुलकी दो रेलिंग ही टूटी थी। उस भगदड़में पचासों लोग कालके गालमें समा गये।

हमारी जीवन जीनेकी दिशा गलत हो गयी है। हमने मृत्युको बहुत महत्त्व दे दिया है। जीवनकी उपेक्षा करके मृत्युके भयका ऐसा असर है कि व्यक्ति अकेलेपनसे, अँधेरेसे, अनजाने लोगोंसे डरने लगा, अपने-आपसे डरने लगता है। जबकि मृत्यु तो जीवन-परिवर्तनका एक अपरिहार्य संस्कार है। इसे आजतक कोई टाल न सका और कोई टाल भी न सकेगा। जो मृत्युका स्वागत करनेको सन्नद्ध है, वही जिन्दगीका स्वाद ले सका है, वही जीवनको सफल बना सकता है। मृत्यु, अपमान, पराजय,

हानि, अपयश, दुःख, शत्रु, अन्धकार और पतझड़—ये सब ही जीवन, सम्मान, विजय, लाभ, यश, सुख, मित्र, प्रकाश तथा वसंतकी आधारभूमि हैं। इनके बिना संसारकी कल्पना ही सम्भव नहीं। मात्र रसगुल्लासे काम न चलेगा, जीवनमें करेला भी बहुत उपयोगी है। करेलेकी कड़वाहटमें रसगुल्लेकी मिठासके दोषोंको शमन करनेकी क्षमता है। जब व्यक्ति सम्मानादिकी मिठासका स्वाद लेनेसे मदमस्त होकर मनोरोगी तथा अभिमानी हो जाता है, पैर जमीनपर नहीं पड़ते, तब भगवान् अपमानादिकी कड़वाहट घोलकर इंसानको यथार्थकी खुरदरी जमीनपर खड़ा कर देते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति जहाँ पानीका रिसाव (लीकेज) है, वहीं टेपिंग करता है, दूसरी जगह शोर नहीं मचाता। जहाँसे समस्याका उदय है, वहीं समाधान करें, किसी अन्यके अपराधको, दोषको, कहीं दूसरोंके सामने कहना नासमझी है। जिसकी गलती है, उसीको एकान्तमें समझानेसे समाधानकी सम्भावना है, अन्यत्र कहनेसे तो बात बिगड़नेकी ही सम्भावना बढ़ती है।

समस्या और समाधान एक ही सिक्केके दो पहलू हैं, बहुत करीब हैं, दोनोंके बीच बहुत झीना-सा पर्दा है। हमारे नजरियेपर निर्भर करता है कि हम किस व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटनाको किस रूपमें लेते हैं। हमारी समझसे समस्या कुछ है ही नहीं, सिर्फ हमारी समझका फर्क है। उलझनमें हमारा मन तथा मस्तिष्क होता है और हम उसे समाजके माथे मढ़ देते हैं।

अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामकी महिमा

भगवान् धन्वन्तरिजीके वचन हैं—‘अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥’ **अर्थात् ‘अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ।’**

इसी प्रकार पद्मपुराणमें श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीके अनुनयपर उन्हें भगवान्‌के मत्स्य-कूर्मादि अवतारोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाया। इसी प्रसंगमें उन्होंने पार्वतीको समुद्रमन्थनकी कथा सुनाते हुए भगवान् विष्णुकी नाममहिमाका प्रकाशन इस प्रकार किया—“शुक्ल एकादशी तिथिको समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। उस समय लक्ष्मीके प्रादुर्भावकी अभिलाषा रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मुनिवरोंने भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान और पूजन किया। उस मुहूर्तमें सबसे पहले कालकूट नामक महाभयंकर विष प्रकट हुआ, जो बहुत बड़े पिण्डके रूपमें था। वह प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता और दानव भयसे पीड़ित हो भागने लगे। यह देख मैंने उन सबको रोककर कहा—‘देवताओ! इस विषसे भय न करो। इस कालकूट नामक महान् विषको मैं अभी अपना आहार बना लूँगा।’ मेरी बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे चरणोंमें पड़ गये और ‘साधु-साधु’ कहकर मेरी स्तुति करने लगे। उधर मेघके समान काले रंगवाले उस महाभयानक विषको प्रकट हुआ देख, मैंने एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें सर्वदुःखहारी भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए उस भयंकर विषको पी लिया। सर्वव्यापी श्रीविष्णुके तीन नामोंके प्रभावसे उस लोकसंहारक विषको मैंने अनायास ही पचा लिया।” उन्होंने आगे कहा—

अच्युतानन्तगोविन्द इति नामत्रयं हरेः। यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत्। नामत्रयमहामन्त्रं जपेद् यः प्रयतात्मवान्॥
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २३२। १९—२१, कलकत्ता मोर-संस्करण)

‘अच्युत, अनन्त और गोविन्द—ये हरिके तीन नाम हैं। जो एकाग्रचित्त हो इनके आदिमें ‘प्रणव’ और अन्तमें ‘नमः’ (‘ॐ अच्युताय नमः’ ‘ॐ अनन्ताय नमः’ ‘ॐ गोविन्दाय नमः’ **इस रूपमें) भक्तिपूर्वक जप करता है, उसे विष, रोग और अग्निसे होनेवाली मृत्युका भय नहीं प्राप्त होता। जो इस तीन नामरूपी महामन्त्रका एकाग्रतापूर्वक जप करता है, उसे काल और मृत्युसे भी भय नहीं होता; फिर दूसरोंसे भय होनेकी बात ही क्या है!’**

संकल्प-शुद्धिकी अनिवार्यता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

कर्तव्यरूपसे प्राप्त कार्यको धैर्य और उत्साहपूर्वक पूरा कर देनेसे करनेकी वासना मिटकर स्वत: ही सहज निवृत्ति प्राप्त होती है और साधकका चित्त शुद्ध होता चला जाता है।

अब यह विचार करना चाहिये कि मनुष्यका हरेक कार्य, उसकी हरेक प्रवृत्ति शुद्ध और सही अर्थात् जैसी होनी चाहिये, ठीक वैसी कैसे हो? विचार करनेपर मालूम होगा, हरेक प्रवृत्तिके पहले कर्ताके मनमें उसमें प्रवृत्तिकी शुद्धिके लिये संकल्पकी शुद्धि अनिवार्य है।

बुरे संकल्प और भावनाका त्याग करके, अच्छे संकल्प और अच्छी भावनाको स्वीकार करनेसे संकल्पकी शुद्धि होती है। बुरे संकल्प और बुरी भावना उसको कहते हैं, जिसमें किसीका अहित निहित हो तथा अच्छे संकल्प और अच्छी भावनाएँ वे हैं, जिनमें हित भरा हो। जिसमें दूसरोंका हित होता है, उसीमें साधकका भी हित होता है और जिसमें दूसरोंका अहित होता है, उसमें अपना भी अहित ही होता है। दूसरेके साथ की हुई भलाई ही अपने प्रति भलाई होती है। दूसरेके साथ की हुई बुराई ही अपने प्रति बुराई होती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; तथापि मनुष्य दूसरेका अहित करके अपना हित चाहता है, यह बड़ी भारी भूल है।

संकल्पकी शुद्धिके लिये वेदोंमें ईश्वरसे प्रार्थना करनेका प्रकार बताया गया है। इसके लिये 'शिवसंकल्प' नामका एक प्रकरण शुक्ल यजुर्वेदमें आता है—ऐसा सुना है।

शुभ संकल्पोंका चित्तपर बहुत प्रभाव पड़ता है। इससे चित्तकी शुद्धि सुगमतासे हो जाती है। इसलिये साधकको चाहिये कि यदि संकल्प करना ही हो, संकल्प किये बिना मन न माने तो शुभ संकल्प ही करना चाहिये। अशुभ संकल्प कभी नहीं करना चाहिये।

यदि मनमें ऐसी शंका उठे कि क्या चित्त शुद्ध होनेके पहले शुभ संकल्पोंका करना साधकके वशकी बात है? क्या वह इसमें स्वाधीन है? तो यों समझना चाहिये कि किसीका भी चित्त पूर्णरूपसे अशुद्ध नहीं होता। उसमें अशुद्धिके साथ-साथ शुद्धिका अंश भी अवश्य रहता है। उसीके प्रभावसे मनुष्यके मनमें अपना सुधार करनेकी इच्छा होती है। अत: इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य बुरे संकल्पोंका त्याग करके अच्छे संकल्पोंको करनेमें स्वाधीन है। भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे वह इस कार्यमें सफल हो सकता है।

संकल्पके अनुसार ही मनुष्यकी प्रवृत्ति हुआ करती है। अत: शुभ संकल्पोंसे मनुष्यकी शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति होती है और उन कामोंको भगवान्‌के नाते धैर्य और कुशलतापूर्वक पूरा करनेसे कर्ताका भगवान्‌से सम्बन्ध हो जाता है।

यह नियम है कि जिसपर मनुष्यका विश्वास होता है, उसीसे सम्बन्ध होता है, वही प्रिय होता है, प्रियका ही स्मरण होता है, जिसका स्मरण होता है, उसीका चिन्तन होता है और यह चिन्तन ही आगे जाकर ध्यान, समाधि बन जाता है। जब साधक समाधिके रससे भी उपरत हो जाता है, उसे भी नहीं चाहता, तब उसे विशुद्ध प्रेमकी प्राप्ति होती है।

यह बात पहले कही गयी थी कि चिन्तन करनेयोग्य एकमात्र प्रभु हैं; क्योंकि जो सदा हैं, सब जगह हैं और स्वयंप्रकाश हैं, वे ही चित्तद्वारा प्राप्त हो सकते हैं। शरीर या भोग्यपदार्थ एवं संसार चिन्तन करनेयोग्य नहीं हैं; क्योंकि जो सदा सब जगह नहीं हैं, जो अनित्य और जड़ हैं, उनकी प्राप्ति चिन्तनसे नहीं होती। अत: उनका चिन्तन करना व्यर्थ है। भगवान्‌का चिन्तन ही सार्थक चिन्तन है। अतएव साधकको निरन्तर प्रभुका ही चिन्तन करना चाहिये। प्रभुका चिन्तन करनेके लिये उनपर विश्वास करना और उनको अपना मानना

आवश्यक है।

जो वास्तवमें अपने नहीं हैं, जिनको मनुष्य भूलसे अपना मानता है, जिस माने हुए सम्बन्धका विच्छेद अवश्य होनेवाला है, उन अनित्य क्षणभंगुर पदार्थोंको जबतक साधक नित्य और अपना मानता रहता है, तबतक वह अपने सच्चे नित्य सम्बन्धी परम प्रेमास्पद प्रभुको पूर्णरूपसे अपना नहीं मान पाता। इसलिये साधकको चाहिये कि उसका जो शरीर और संसारमें 'मैं' पन और अपनापन भूलसे माना हुआ है, उसका सर्वतोभावसे परित्याग कर दे। ऐसा करनेसे उसका अपने नित्य सखा—स्वभावसे ही सुहृद् प्रभुमें अपनापन स्वतः हो जायगा। जो भाव त्यागसे प्राप्त होता है, उसे प्राप्त करनेमें मनुष्य सदैव स्वतन्त्र है; क्योंकि त्याग करनेमें कोई भी पराधीन नहीं है।

योग, बोध और प्रेम किसी क्रियाका फल नहीं है। इनका सम्बन्ध साधककी चित्तशुद्धिसे है। चित्तशुद्ध होनेपर योगीको योग, विचारशीलको बोध और प्रेमीको प्रेम स्वतः प्राप्त होता है। चित्तकी शुद्धि उन महापुरुषोंके सत्संगसे होती है, जिनका भाव शुद्ध हो गया है, अतः साधकको चाहिये कि सत्पुरुषोंका संग प्राप्त करके अपने साधनका निर्माण करे और उनके आज्ञानुसार तत्परतासे साधनमें लग जाय। अपने प्राणोंसे भी साधनका महत्त्व अधिक समझे।

सत्पुरुषोंका संग मिलनेमें प्रारब्धको हेतु नहीं मानना चाहिये। सत्पुरुषोंका संग भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे मिलता है एवं हरेक परिस्थितिमें प्रभुकी कृपाका दर्शन करनेसे और उसका आदर करनेसे भगवान्‌की कृपा फलीभूत होती है। अतएव साधकको भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके प्राप्त शक्ति और परिस्थितिके अनुसार सत्पुरुषोंके संगकी प्राप्तिके लिये सच्ची अभिलाषाके साथ चेष्टा करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे सत्संगकी प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अशुभ संकल्पोंके त्यागसे शुभ संकल्पोंकी पूर्ति स्वतः होने लगती है। उससे उत्कृष्ट भोगोंकी प्राप्ति हो जाती है, पर जो साधक अपनेको शुभ संकल्पोंकी पूर्तिके सुखमें आबद्ध नहीं करते, उन्हें सब संकल्पोंकी निवृत्तिद्वारा योगके रसकी प्राप्ति होती है। जो साधक योगके रसमें भी आबद्ध नहीं होते, उन्हें विवेकपूर्वक सद्‌गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। पर जो साधक मोक्षकी भी उपेक्षा कर देता है, उसे परम प्रेमकी प्राप्ति होती है, जो वास्तवमें पाँचवाँ पुरुषार्थ है, जिसके प्रभावसे पूर्णब्रह्म, सच्चिदानन्दघन अपनी महिमामें नित्य ज्यों-का-त्यों स्थित रहता हुआ ही जीवभावको स्वीकार करता है। सम्पूर्ण संसार जिसके एक अंशमें है, वह अनन्त ब्रह्म प्रेमियोंकी गोदमें खेलता है।

भगवान्‌में जिस प्रकार ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा है, उसी प्रकार उनका माधुर्य भी अनन्त है। वे छः दिनकी अवस्थामें पूतनाके प्राण चूसकर ऐश्वर्यकी लीला करते हुए ही, अपनी अहैतुकी कृपासे उसे वह गति भी प्रदान कर देते हैं, जो कि बड़े-बड़े तपस्वी, योगियोंको भी बड़ी कठिनाईसे मिलती है। उन्होंने ब्रह्माके अभिमानका नाश करनेके लिये और गौओं तथा गोप-गोपियोंके वात्सल्य-प्रेमकी लालसाको पूर्ण करनेके लिये स्वयं वत्स और वत्सपाल बनकर अपने ऐश्वर्य और माधुर्यको प्रकट करनेवाली कैसी अद्‌भुत लीला की!

जो प्रभु अपने प्रेमीके लिये अपनी ऐश्वर्य-शक्तिको भूलकर प्रेमीके वशमें हो जाते हैं, अपने प्रेमीको प्रेमास्पद बनाकर स्वयं उसके प्रेमी बन जाते हैं, उस प्रेमीके द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए पत्र-पुष्प, फल-जल आदि साधारण-से-साधारण पदार्थोंके लिये लालायित रहते हैं। उन प्रभुके साथ प्रेम न करके यह मनुष्य उनसे प्रेम करता है, जो इससे प्रेम करना नहीं चाहते। यह उनको चाहता है, जो इसे नहीं चाहते। उनको अपना मानता है, जो कभी इसके नहीं हुए। इससे बड़ा प्रमाद और क्या होगा?

गो-चिन्तन—

सन्त स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजीकी अद्भुत गोभक्ति

(कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल, एम०ए०, पी-एच०डी०)

विश्वमें भारत-वसुन्धरा ही ऐसी है, जहाँ भगवान् और सन्तोंका अवतरण होता है। अनगिनत सन्तोंकी महिमासे इतिहास भरा पड़ा है। व्रजभूमि तो भगवान्के अवतार और सन्तोंसे महिमामण्डित है। इसी व्रजमें मथुरासे पन्द्रह किलोमीटर दूर जहाँ जन्मके बाद भगवान्को पहुँचाया गया था, उसी प्राचीन गोकुल वर्तमान महावनमें श्रीउदासीन कार्ष्णि आश्रमके नामसे एक आश्रम है। आजसे लगभग दो सौ वर्ष पहले इस आश्रमकी स्थापना हुई। यहाँके ठाकुरजीका विग्रह अद्‌भुत है। इन्हें ठाकुर रमण विहारीजीके नामसे सब जानते हैं। इसी आश्रमके सन्तोंमें एक सन्त थे, स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजी। वैसे तो ये सन्त उदासीन-सम्प्रदायसे सम्बन्धित हैं, किंतु भगवान् कृष्णकी भक्तिके कारण इनका कार्ष्णि नामसे पूर्व आचार्योंने नामकरण किया।

महाराजश्रीका जीवन-परिचय तो यहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि लेखकी अपनी मर्यादा होती है। यहाँ हम उनकी गोभक्तिका उल्लेख कर रहे हैं। आश्रममें प्रारम्भमें गायें नहीं थीं। गाँवके एक भक्त अपनी अनासक्तिके कारण गायकी सेवा न कर सकनेके फलस्वरूप आश्रममें मन्दिरके सामने सन्तोंके मना करनेपर यह कहकर कि मैं तो ठाकुरजीकी सेवामें समर्पित कर रहा हूँ, सवत्सा गायको बाँधकर चले गये। इस गायका नाम पूज्य महाराजश्रीने गंगा रखा। बादमें और गायें भी आ गयीं। गोशाला पक्की बन गयी। लगभग तीस-पैंतीस गायें हो चुकी थीं। महाराजश्रीने गायोंके अलग-अलग नाम रख रखे थे। वे प्रातःकाल उनकी गोबर उठानेसे लेकर सभी तरहकी सेवा करते। अन्य सेवक भी सेवा करते। जब कभी महाराजश्री कहीं बाहर जाते तो गायोंसे मिलकर जाते। आते तो गायोंसे मिलते। वे जिस-जिसका नाम लेते, वही गाय उनके पास आती। धीरे-धीरे गोवंश बढ़ता गया। स्वाभाविक है चारे आदिकी समस्या होना। इस समस्यासे उत्पन्न एक घटनाके विषयमें पूज्य पिताजीने एक बार बताया कि गायोंके लिये चारा समाप्त हो गया था। आश्रमके व्यवस्थापक महाराजश्रीके पास गये और कहा कि महाराजश्री चारा पूर्ण हो गया है, आप आज्ञा दें तो कुछ गायें बेचकर चारेकी व्यवस्था कर लें। ये सुनना ही था कि महाराजश्री अत्यधिक नाराज हुए और कहा कि आज गाय बेचनेकी बात कर रहे हो, कल आश्रमसे सन्तोंको निकालनेकी बात करोगे। हमारे तो रमणविहारी मालिक हैं, वे जैसा चाहें वैसा करें। महाराजश्रीका यह मूल मन्त्र था—

ठाकुर हमारे रमणविहारी, हम हैं रमणविहारी के।
साधू सेवा धर्म हमारा, काम न दुनियादारी से।
कोई भला कहो या बुरा कहो, हम हो चुके रमणबिहारीके॥

इसी सिद्धान्तपर महाराजश्री स्वयं चलते और अपने शिष्योंको भी इसका उपदेश करते। महाराजश्रीकी बात सुनकर व्यवस्थापक तो चले गये, किंतु कुछ ही देरमें एक व्यक्ति आये और महाराजश्रीकी कुटियामें जाकर कहा कि ये पैसे गो-सेवाके लिये हैं। पैसे देकर आगन्तुक शीघ्र ही कुटियासे निकल गये। महाराजश्री कुछ समझ नहीं पाये, तुरंत किसी सन्तको बुलाया और कहा अभी-अभी एक व्यक्ति गये हैं, तुरंत बुलाकर लाओ, उन्हें प्रसाद पवाओ। सन्त बाहर गये, चारों तरफ देखा, पर कहीं कोई नहीं मिला। तब महाराजश्रीने स्वयं कहा, देखा! गोसेवाके लिये ठाकुरजी स्वयं पधारे थे।

महाराजश्रीके गोलोकगमनकी घटना भी अद्भुत है। गोमाताके प्रति अपूर्व भक्ति रखते हुए उन्होंने दीपावलीसे पूर्व गोवत्स द्वादशीको सायंकाल गोलोकधामके लिये महाप्रयाण किया। पुष्पोंके विमानमें महाराजश्रीके श्रीविग्रहको विराजमानकर आश्रमकी बाह्य परिक्रमा की गयी। जब परिक्रमा मुख्य द्वारके निकट आयी तो उसी समय आश्रमकी गायें भी चरकर आ रही थीं। महाराजश्रीको देखकर वे सब स्तब्ध होकर वहीं खड़ी हो गयीं। ग्वाले उन्हें गोशालामें ले जाना चाहते, किंतु वे जा नहीं रही थीं। अद्‌भुत बात तो यह थी कि सभी गायें रो रही थीं, अविरल अश्रुपात हो रहा था। ऐसा था उनका गायोंके प्रति और गायोंका उनके प्रति प्रेम!

साधनोपयोगी पत्र

(१)

विश्व-कल्याण

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप घर छोड़कर एक आश्रम बनाना चाहते हैं और विश्वमानवके कल्याणार्थ सद्भावोंका प्रचार करना चाहते हैं, आपकी यह भावना बहुत ही सराहनीय है। विश्व-कल्याणके लिये त्याग करना सर्वथा स्तुत्य है, परंतु यथार्थमें विश्व-कल्याण करनेवाले हैं विश्वात्मा और विश्वेश्वर भगवान् ही। हमारा प्रत्येक कर्म उन भगवान्की इच्छाके अनुसार, उनकी सेवाके लिये होना चाहिये। फिर उससे अपने-आप ही विश्व-कल्याण होगा। पर यदि हम भगवान्को भूलकर विश्व-कल्याणके लिये अहंकारका आश्रय लेकर मैदानमें उतरेंगे तो हमारा अहंकार हमारे उस कार्यको इतना विकृत कर देगा कि विश्व-कल्याण तो दूर रहा, अपना कल्याण भी कठिन हो जायगा। भगवान्के इच्छानुसार कर्म करनेके लिये न तो घर छोड़नेकी आवश्यकता है, न आश्रम बनानेकी। हमारा अहंकार, ममत्व, राग-द्वेष हम जहाँ भी जाते हैं, हमारे साथ जाता है। हमने 'घर' नामक स्थान छोड़ा और 'आश्रम' नामक स्थान बनाकर उसमें रहना आरम्भ किया। पहले घरका अहंकार था, अब आश्रमका हो गया। घरमें ममता थी, अब आश्रममें हो गयी। घरके प्राणि-पदार्थोंको लेकर राग-द्वेष था, अब आश्रमके प्राणि-पदार्थोंको लेकर हो गया। परिवर्तन केवल नामका हुआ, वस्तुस्थिति वही रही। त्याग वस्तुतः कुछ भी नहीं हुआ। बल्कि त्यागका एक मिथ्या अभिमान और छा गया। हम अपनेको त्यागी और दूसरे लोगोंको भोगी मानने-मनवाने लगे। तथा इस त्यागके बदलेमें—अपनेको विश्व-कल्याणका व्रती समझकर उसके बदलेमें—लोगोंसे सुख-सुविधा तथा मान-सत्कार-पूजा प्राप्त करनेका अपनेको अधिकारी समझने लगे। सुख-सुविधा और मान-पूजा प्राप्त हुई तो उसमें नयी आसक्ति उत्पन्न हो गयी। त्याग और विश्व-कल्याणके नामपर शरीर और इन्द्रियोंकी पूजा होने लगी, जीवन भोगपरायण हो गया तथा त्याग एवं विश्व-कल्याण केवल बाहरी आडम्बर रह गया। इस तरह अपने यथार्थ कल्याणकी आशा-सम्भावना भी प्रायः विलुप्त हो गयी। इस प्रकारके मिथ्या जीवनसे वह सदा बचा रहता है, जो अपनेको त्यागी और विश्व-कल्याणका व्रती न बताकर घरमें रहता है। ऐसा निरभिमानी साधारण मानव घरमें रहकर भी भगवान्के इच्छानुसार उनकी सेवाके भावसे घरके साधारण कर्म करता हुआ भगवान्की कृपा प्राप्त करता है और उसके द्वारा विश्वका कल्याण-साधन भी होता है। विश्व-कल्याणके लिये दूकान खोलने, विज्ञापन करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो मनका भाव है और इस भावकी प्राप्ति होनेपर उस मनुष्यके द्वारा हर-हालतमें तथा हरेक कर्मसे विश्व-कल्याण हुआ करता है।

आज विश्व-कल्याणका बाजार लगा है। सन्त-महात्मा, ज्ञानी-भक्त, संन्यासी-गृहस्थ, धनी-गरीब, नेता-जनता, शासक-शासित, पुरुष-स्त्री, पूँजीपति-साम्यवादी, मालिक-मजदूर सभी अपनेको विश्व-कल्याणके लिये ही कर्म करनेवाला बतलाते हैं। यहाँतक कि लूट-मार करनेवाले साधारण अपराधीसे लेकर एटम और हाइड्रोजन बम बनानेवाले राष्ट्र भी अपना उद्देश्य विश्व-शान्तिके द्वारा विश्व-कल्याण ही बतलाते हैं। मानो आजका प्रत्येक मानव-प्राणी विश्व-कल्याणके लिये ही जन्मा है और जी रहा है। वस्तुतः ऐसा होता तो विश्व-कल्याण निश्चय ही होता और इससे अधिक आनन्दकी बात और क्या होती, परंतु परिणाम देखनेसे ऐसा निश्चय होता है कि विश्व-कल्याणके नामपर हमलोग आज संकुचित तथा नीच स्वार्थ-साधन एवं इन्द्रियतृप्तिके प्रयासमें ही

लगे हुए हैं और अपने ही कर्मोंसे अपने-आपको धोखा दे रहे हैं। इसलिये आपकी नीयतपर जरा भी संदेह न करता हुआ भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने हृदयकी गहराईमें जाकर सावधानीके साथ देखें कि कहीं आपकी प्रत्यक्ष बेजानकारीमें विश्व-कल्याणके नामपर नाम, यश, कीर्ति, पूजा, प्रतिष्ठा या सुख-सुविधा पानेकी कोई कामना-वासना तो किसी कोनेमें नहीं छिपी है, जो आपको धोखा दे रही है।

विश्व-कल्याणके लिये कार्य करनेवालोंपर मेरा कोई आक्षेप नहीं। जो पुरुष सचमुच विश्व-कल्याणार्थ जीवन लगाये हुए हैं, वे धन्य हैं। उनके चरण-रज-कणसे मनुष्य पवित्र हो सकता है; परंतु आज तो 'विश्व-कल्याण' तमाशा-सा हो गया है और उससे किसी भी बुद्धिमान् मनुष्यको बचना चाहिये। इसी विचारसे मैंने आपसे यह निवेदन किया है। आशा है, आप इसपर विचार करके अपना मार्ग निश्चित करेंगे। शेष भगवत्कृपा!

(२)

बिल्वार्चनकी विधि

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। बृहद्धर्मपुराणके अनुसार—

पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो।
महेशपूजनार्थाय तत्पत्राणि चिनोम्यहम्॥

अर्थात् हे पवित्र वृक्ष! हे महाभाग मालूर! हे प्रभो श्रीफल! भगवान् महेश्वरकी पूजाके निमित्त मैं आपके पत्रोंको चुन रहा हूँ।

इस मन्त्रसे प्रार्थना करके बिल्ववृक्षसे पत्र तोड़े और उसके बाद—

ॐ नमो बिल्वतरवे सदा शंकररूपिणे।
सफलानि समाङ्गानि कुरुष्व शिवहर्षद॥

अर्थात् कल्याणकारी स्वरूपवाले (अथवा भगवान् शंकरके तरुविग्रह) बिल्ववृक्ष! आपको सर्वदा नमस्कार है। हे शिवको हर्ष प्रदान करनेवाले! अपने सभी अवयवों (पत्र, पुष्प, फल, काष्ठादि)-को [शिवार्चनका साधन बनाकर] सफल कीजिये।

इस मन्त्रको पढ़कर वृक्षको प्रणाम कर ले।

अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, सायंकाल, मध्याह्नकाल—इन समयोंमें बिल्वपत्र नहीं तोड़ना चाहिये। रात्रिमें कोई पत्र-पुष्प नहीं तोड़ना चाहिये, यह तो एक व्यापक नियम है ही। बिल्ववृक्षकी शाखा नहीं तोड़नी चाहिये।

एक दिनका तोड़ा बेलपत्र छः महीनेतक चढ़ाने-योग्य रहता है, छः महीने बाद पर्युषित (बासी) माना जाता है।

पंचाक्षर शिवमन्त्रसे बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये, यह बात 'वीरमित्रोदय' के 'पूजाप्रकाश' में आयी है। बिल्वपत्र कोमल हो, कीड़ोंसे खाया, कटा-फटा न हो, उसमें चक्र और वज्र न हो। बिल्वपत्रपर कीड़े सफेद टेढ़ी-मेढ़ी रेखा बना देते हैं, उसे चक्र कहते हैं और पत्रके डंठलमें जो छोटी-सी घुंडी अन्तमें होती है, उसे वज्र कहा जाता है। उस घुंडीको तोड़ देना चाहिये। चढ़ाते समय बिल्वपत्रका चिकना भाग मूर्तिकी ओर और पृष्ठभाग ऊपर रखकर चढ़ाना चाहिये।

बिल्वपत्रपर कुछ लिखकर उसे चढ़ाया जाय—ऐसी विधि तो नहीं पायी जाती। कुछ लोग 'राम' लिखकर चढ़ाते हैं। इसका निषेध भी नहीं है।

अपने हाथसे घिसकर चन्दनका स्वयं तिलक करना और अपने लिखे ग्रन्थका लिखित प्रतिसे पाठ करना कुछ लोगोंके मतसे अशुभ है। कहते हैं कि इससे लक्ष्मीका नाश होता है। इसीसे चन्दन घिसकर लोग पहले देवताको लगा देते हैं या देवताके उद्देश्यसे छींटा दे देते हैं तथा लिखी पुस्तक भगवान्‌के सामने रखकर फिर पाठ करनेकी प्रथा है। परंतु इन बातोंमें विशेष सार नहीं मालूम होता। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, शुद्ध आश्विन-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १०। ४७ बजेतक	गुरु	पू०भा० रात्रिमें ८। ३२ बजेतक	३ सित०	**मीनराशि** दिनमें २। १ बजेसे, **द्वितीयाश्राद्ध।**
द्वितीया ,, १२। २६ बजेतक	शुक्र	उ०भा० ,, १०। ५३ बजेतक	४ ,,	**तृतीयाश्राद्ध, भद्रा** रात्रिमें १। २३ बजेसे, **मूल** रात्रिमें १०। ५३ बजेसे।
तृतीया ,, २। २१ बजेतक	शनि	रेवती ,, १। २७ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २१ बजेतक, **मेषराशि** रात्रिमें १। २७ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रि १। २७ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। १४ बजे।
चतुर्थी ,, ४। २४ बजेतक	रवि	अश्वनी रात्रिशेष ४। २४ बजेतक	६ ,,	**चतुर्थीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें ४। ३ बजेतक।
पंचमी सायं ६। २६ बजेतक	सोम	भरणी अहोरात्र	७ ,,	**भरणीश्राद्ध, पंचमीश्राद्ध।**
षष्ठी रात्रिमें ८। १५ बजेतक	मंगल	भरणी प्रात: ६। ३४ बजेतक	८ ,,	**षष्ठीश्राद्ध, भद्रा** रात्रिमें ८। १५ बजेसे, **वृषराशि** दिनमें २। ७ बजेसे।
सप्तमी ,, ९। ४६ बजेतक	बुध	कृत्तिका दिनमें ८। ४९ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १ बजेतक, **सप्तमीश्राद्ध।**
अष्टमी ,, १०। ४७ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, १०। ४० बजेतक	१० ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ११। २२ बजेसे, **जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध।**
नवमी ,, ११। २२ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, १२। ६ बजेतक	११ ,,	**मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।**
दशमी ,, ११। २५ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, १। १ बजेतक	१२ ,,	**दशमीश्राद्ध, भद्रा** दिनमें ११। २४ बजेसे रात्रिमें ११। २५ बजेतक।
एकादशी ,, १०। ५७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, १। २५ बजेतक	१३ ,,	**एकादशीश्राद्ध, इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), कर्कराशि** दिनमें ७। १९ बजेसे, **उत्तराफाल्गुनीका सूर्य** रात्रिमें १२। ११ बजे।
द्वादशी ,, १०। १ बजेतक	सोम	पुष्य ,, १। २० बजेतक	१४ ,,	**द्वादशीश्राद्ध, मूल दिनमें १। २०** बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८। ३९ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, १२। ५० बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। ३९ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें १२। ५० बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध।**
चतुर्दशी ,, ६। ५७ बजेतक	बुध	मघा ,, ११। ५९ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** प्रात: ७। ४९ बजेतक, **चतुर्दशीश्राद्ध, मूल** दिनमें ११। ५९ बजेतक।
अमावस्या सायं ४। ५५ बजेतक	गुरु	पू०फा० ,, १०। ४७ बजेतक	१७ ,,	**अमावस्या, अमावस्याश्राद्ध, पितृविसर्जन, कन्याराशि** सायं ४। २५ बजेसे, **महालया समाप्त, कन्या संक्रान्ति** दिनमें १०। १९ बजे, **विश्वकर्मा-जयन्ती, शरद्-ऋतु प्रारम्भ।**

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, अधिक आश्विन-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २। ४२ बजेतक	शुक्र	उ० फा० दिनमें ९। २२ बजेतक	१८ सित०	**अधिकमास प्रारम्भ।**
द्वितीया ,, १२। २० बजेतक	शनि	हस्त ,, ७। ४६ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ६। ५५ बजेसे।
तृतीया ,, ९। ५४ बजेतक	रवि	चित्रा प्रात: ६। ६ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। ४१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी प्रात: ७। २८ बजेतक	सोम	विशाखा रात्रिमें २। ५१ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** प्रात: ७। २८ बजेतक, **वृश्चिकराशि** दिनमें ९। ५६ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें ३। १ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, १। २६ बजेतक	२२ ,,	**मूल** रात्रिमें १। २६ बजेसे।
सप्तमी ,, १। ७ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, १२। १६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ७ बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें १२। १६ बजेसे, **सायन-तुलाराशिका सूर्य** दिनमें १०। १६ बजे।
अष्टमी ,, ११। ३४ बजेतक	गुरु	मूल ,, ११। २७ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। २० बजेतक, **मूल** रात्रिमें ११। २७ बजेतक।
नवमी ,, १०। २४ बजेतक	शुक्र	पू०षा० ,, १०। ५९ बजेतक	२५ ,,	**मकरराशि** रात्रिशेष ४। ५८ बजेसे।
दशमी ,, ९। ४० बजेतक	शनि	उ०षा० ,, १०। ५८ बजेतक	२६ ,,	× × × ×
एकादशी ,, ९। २५ बजेतक	रवि	श्रवण ,, ११। २५ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३३ बजेसे रात्रिमें ९। २५ बजेतक, **पुरुषोत्तम एकादशीव्रत (सबका), हस्तमें सूर्य** दिनमें ३। ३५ बजे।
द्वादशी ,, ९। ४१ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, १२। २३ बजेतक	२८ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ११। ५४ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ११। ५४ बजे।
त्रयोदशी ,, १०। ३१ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, १। ५२ बजेतक	२९ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ११। ४६ बजेतक	बुध	पू०भा० ,, ३। ४६ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ४६ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें ९। १७ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १। २६ बजेतक	गुरु	उ०भा० रात्रिशेष ६। ३ बजेतक	१ अक्टू०	**भद्रा** दिनमें १२। ३६ बजेतक, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

इष्टदेव और गुरुदेवकी कृपा

यह सच्ची घटना दिनांक ३ जनवरी वर्ष २०१९ दिन गुरुवार समय सुबह लगभग ६ बजेकी है, जब मुझे अपने इष्टदेव साक्षात् प्रभु श्रीराम एवं पूज्य गुरुदेवकी कृपाका अनुभव हुआ। मेरा मानना है कि भगवान् जब अपने भक्तपर किसी प्रकारका कोई विषम संकट आता देखते हैं, तो वे उसका किस प्रकार निराकरण करते हैं, यह भक्तको बादमें अनुभव होता है।

मैं ५ जनवरी, सन् २००४ ई० से अनवरत धार्मिक तीर्थयात्राएँ कर रहा हूँ तथा साथ ही ४०-५० तीर्थयात्रियोंको अपने मार्गदर्शनमें तीर्थयात्रा करा भी रहा हूँ। इस कार्य (तीर्थयात्रा करना एवं कराना)-को मैं अपनी पूजा एवं साधनाका ही एक अंग मानता हूँ। यही पूजा-साधना मेरे तीव्रतम प्रारब्धको काटनेमें सहायक हुई। यह मेरी अपनी सोच है।

मैंने दिनांक १८-१२-१८ से ३-१-२०१९ तकका तीर्थयात्रा-भ्रमण-कार्यक्रम मथुरा-पावागढ़-सोमनाथ-द्वारका-भीमाशंकर-त्र्यम्बकेश्वर-परली बैजनाथ-अवड़ा नागेश-ओंकारेश्वर-उज्जैन-मथुराका बनाया था।

हमलोग उक्त तीर्थस्थानोंका भ्रमण करके अपने अन्तिम पड़ाव उज्जैन आ गये। यहाँ हमलोग दानीगेट-स्थित महाराजा अजयपालसिंहकी धर्मशालामें रुके तथा भगवान् महाकालके दर्शन किये।

उज्जैन धर्मशालामें हमारे समूहके एक तीर्थयात्री श्रीलीलाधर माहेश्वरीजी रातमें बाथरूममें लघुशंकाके लिये गये। बाथरूममें पैर फिसलनेसे उनके कूल्हेकी हड्डी टूट गयी। उनकी धर्मपत्नी साथ थीं। माहेश्वरीके परिवार (सिकन्दराराऊ)-को उक्त घटनाकी सूचना देते हुए कहा गया कि हम ट्रेनसे आपके पिताजीको ला रहे हैं। आप लोग आगरा कैंट रेलवे स्टेशनपर आ जायँ। हम लोग लीलाधरजीको लेकर आगरा कैंट आ गये। आगरा कैंट स्टेशनपर उनके दोनों पुत्र तथा दामाद आये थे। हमने लीलाधरजीको उनके सुपुर्द कर दिया तथा कहा किसी योग्य डाक्टरको दिखायें। हमलोग ट्रेनमें मथुरा जानेके लिये चढ़ने लगे, तो लीलाधरजीने हाथ जोड़कर अनुरोध किया कि 'उपाध्यायजी! आप रुक जाओ। मुझे हास्पिटलमें भर्ती कराके चले जाना।' मैंने काफी मना किया और कहा कि आपके बेटे और दामाद आ गये हैं। मेरी अब कोई आवश्यकता नहीं है। लीलाधरजीने पुनः हाथ जोड़कर अनुरोध किया तो मुझे भी उनपर दया आ गयी। मैंने अपना सूटकेस तथा बिस्तर ट्रेनसे उतार लिया तथा उन्हें रेलवे हास्पिटलमें भर्ती करवाकर और प्राथमिक उपचार दिलवाकर मैं उनसे आज्ञा लेकर तेलंगाना एक्सप्रेस से ५ बजेके लगभग मथुराको रवाना हुआ। तेलंगाना एक्सप्रेस ६ बजेके लगभग मथुरा पहुँच रही थी तथा मथुरासे सिकन्दराराऊके लिये ट्रेन भी ६ बजेके लगभग ही थी। मैंने अपने साथियोंसे फोनपर कहा कि तुम सिकन्दराराऊकी मेरी भी टिकट ले लेना। उन्होंने कहा कि हम टिकट ले लेंगे।

तेलंगाना एक्सप्रेस ६ बजेके लगभग मथुरा आ गयी। मैं ट्रेनसे उतरकर प्लेटफार्म नं० ७ पर (जहाँसे सिकन्दराराऊकी ट्रेन जानी थी) ओवरब्रिजसे जा रहा था। मुझे याद आया कि मेरा बिस्तर ट्रेनमें ही रह गया है। मैं वापस लौटा तो ट्रेन छूट चुकी थी। मैंने चलती ट्रेनमें चढ़नेका प्रयास किया, परंतु मेरे पैर पायदानपर नहीं आये तथा मैं डिब्बेके दोनों पोल पकड़े काफी दूरतक लटकता चला गया। थोड़ी देर बाद मैं डिब्बा एवं प्लेटफार्मके बीच खाली जगहमेंसे नीचे रेलवे ट्रैकपर गिरा, उसी समय पहियेके एक्सल बाक्सने कूल्हेमें टक्कर मारकर मुझे रेलवे लाइनकी ओरसे प्लेटफार्मकी ओर फेंक दिया तथा मेरे हाथ-पैर कटनेसे बच गये। मुझे किसी अज्ञात शक्तिने कहा कि जमीनसे चिपक जाओ। मैं तुरन्त ही जमीनसे चिपक गया तथा

ट्रेन मेरे बगलसे गुजरती रही। प्लेटफार्मपर शोर हुआ कि कोई महात्मा कट गया; क्योंकि मैं साधुवेशमें था। दाढ़ी रखी हुई थी। किसी व्यक्तिने चेन खींच दी। ट्रेन रुक गयी। मुझे रेलवे पुलिसने खींचकर प्लेटफार्मपर डाला तथा मेरा सामान अपने पास सुरक्षित रखकर मुझे रेलवे हास्पिटलमें भर्ती कराया और मेरे पुत्रोंको फोनसे सूचित कर दिया कि तुम्हारे पिताका रेल एक्सीडेन्ट हो गया है। मेरा काफी खून निकल चुका था और शरीर शिथिल हो रहा था। कूल्हा, पसली तथा अन्य फ्रैक्चरोंमें भीषण दर्द हो रहा था। रेलवे हास्पिटलके डाक्टरोंने प्राथमिक उपचार करके जिला चिकित्सालय मथुराको रेफर कर दिया। उधर मेरे पुत्रके एक मित्र मथुरामें रहते थे। उसने उन्हें मेरी रेल दुर्घटनाके बारेमें सूचित किया तथा तुरन्त रेलवे हास्पिटल पहुँचनेके लिये कहा। वे रेलवे हास्पिटल पहुँच गये तथा मुझे मथुराके एक प्रतिष्ठित अस्पतालमें भर्ती कराया। कुछ देर पश्चात् मेरे पुत्र तथा पत्नी भी पहुँच गये। बच्चोंने मुझे खून दिया तथा ५-६ दिन पश्चात् मुझे मथुराके डॉक्टरने सफदरजंग हास्पिटल देहलीके लिये रेफर कर दिया। डाक्टरने कहा कि इनके कूल्हेका आपरेशन सम्भव नहीं है। कूल्हा ऐसी जगह टूटा है, जहाँ प्लेट या नट-बोल्ट नहीं कसे जा सकते।

मुझे सफदरजंग हास्पिटलमें भर्ती कराया गया, १५ दिन इलाज चला। यहाँ भी डॉक्टरोंने वही कहा, जो मथुराके डॉक्टरोंने कहा था। डॉक्टरोंने कहा कि हम दोनों पैरोंपर वजन लटका देंगे ताकि आप करवट भी न ले सकें। आपको तीन महीनेतक चित्त लेटना होगा। तीन माहके बड़े रेस्टमें ही सब हड्डियाँ जुड़ पायेंगी। मेरे पूरे शरीरमें कुल २१ फ्रैक्चर हैं, यह बात मुझसे छिपाकर रखी गयी थी। बच्चे बोले हम अन्य डॉक्टरोंको दिखायेंगे तथा कूल्हा जुड़वायेंगे। मैंने कहा कि तुमलोग अपनी सोच सकारात्मक बनाओ। यह सोचो कि ईश्वर मेरे शरीरको चीर-फाड़से बचा रहा है। तुमलोग मुझे घर ले चलो। मुझे अपने प्रभु (श्रीरामजी) तथा गुरुदेवपर पूरा-पूरा भरोसा है। मैं ठीक हो जाऊँगा। गुरुदेव दुर्घटनाके दूसरे दिन मथुराके नर्सिंग होममें आये थे। उन्होंने मेरे सम्पूर्ण शरीरपर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया था कि 'तुम चिन्ता मत करो ठीक हो जाओगे।' मुझे उनके आशीर्वादपर पूरा भरोसा है। मुझे घर ले चलो। मेरे पुत्र मुझे घर ले आये। दो-तीन माह दवा चली। बादमें वह भी बन्द हो गयी।

प्रभु (श्रीराम) एवं गुरुजीकी कृपा और धर्मपत्नीकी अच्छी सेवा-शुश्रूषासे मैं ५-६माहमें बेडसे उठकर वॉकरकी सहायतासे कुछ दिन चला। अब बेंतके सहारेसे १-२ किलोमीटर चल लेता हूँ।

मैंने कल्याणके एक अंकमें पढ़ा था कि प्रारब्ध तीन प्रकारके होते हैं—

(१) मन्द प्रारब्ध,

(२) तीव्र प्रारब्ध और

(३) तीव्रतम प्रारब्ध। प्रथम दोनों प्रारब्ध भगवान्के भजन-पूजन तथा अच्छे सन्तोंके आशीर्वादसे कट जाते हैं। परंतु तीव्रतम प्रारब्ध तो मनुष्यको भुगतने ही पड़ते हैं। लेकिन भगवान्का कथन है कि जो श्रद्धा-विश्वासके साथ मुझे जपते हैं या शुभ कर्म करते हैं, उनके प्रारब्ध मैं स्वयं साथ रहकर कटवाता हूँ तथा भक्तको तीव्रताका अहसास नहीं होने देता हूँ।

तुलसीदासजीने भी कहा है कि—

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा शरीर।
तुलसी चिन्ता क्यों करे, भज ले श्री रघुबीर॥

मेरा मानना है कि उक्त घटना घटित होना मेरा तीव्रतम प्रारब्ध था, जो मुझे भुगतना पड़ा तथा प्रभु (श्रीरामजी) तथा गुरुदेवने मेरे साथ रहकर कटवाया। श्रीरामजीने ही गुरुदेवको दो बार मेरे आवासपर मुझे देखने और आशीर्वाद देने भेजा था।

उक्त घटनासे स्पष्ट है कि भगवान् अपने भक्तोंपर कृपा करते हैं। मैंने तथा मेरे परिवारने उस घटनाके माध्यमसे उनकी कृपाका अनुभव कर लिया।

—लालताप्रसाद उपाध्याय

पढ़ो, समझो और करो

(१)

होमगार्डकी सहृदयता

बात सन् १९८५ ई० की है, २४ दिसम्बरको वाराणसीमें हिन्दीके समर्थनमें पूर्ण बन्दका आवाहन हुआ था, मुझे इसकी सूचना नहीं थी।

मेरे दो पुत्र हैं, बड़े पुत्रका जन्म सन् १९८१ ई० में हुआ था और उसका मुण्डन-संस्कार ५ साल बाद पड़ा। पारिवारिक परम्परानुसार अलोपी देवी-इलाहाबाद, कल्याणी देवी-इलाहाबाद, विन्ध्याचल तथा काशी विश्वनाथमन्दिर वाराणसीमें मुण्डन होना था, लेकिन हम लोगोंने उसका मुण्डन उसके जन्मस्थान कानपुरमें तीन सालमें ही कराकर उसके बाल सुरक्षित रखे लिये थे कि उचित अवसरपर पाँच स्थानोंपर मुण्डन कराकर घरकी परम्पराको रखेंगे।

मेरे परिवारजन, दोनों पुत्र—एक ५ सालका दूसरा ३ सालका, मेरा छोटा भाई, उसकी पत्नी, छोटी बेटी और एक भाभी—सब इलाहाबाद आये और वहाँका कार्यक्रम सम्पन्नकर विन्ध्याचल गये, हम लोग सुबह करीब ८ बजे विन्ध्यवासिनीदेवी मन्दिरसे निकलकर बनारसको चले। वहाँ पता चला कि बनारसमें बन्दी है और बस कहाँतक जायगी कोई पता नहीं, फिर भी हम सब लोग एक बसमें बैठे कि चाहे जहाँतक जायगी, ठीक है।

बस हमें रामनगरकी तरफसे गंगापुलतक ले आयी। उसके बाद सारी समस्याएँ शुरू हुईं।

बनारसमें पूर्ण बन्दी थी, यहाँतक कि कोई ताँगा-रिक्शा नहीं, कोई चायकी दुकान नहीं; बस, सब जगह लोग इकट्ठा होकर बातचीत कर रहे थे या सड़कपर चल रहे थे, किसी भी रास्तेपर कोई सवारी नहीं थी।

मुझे थोड़ा ज्ञान था वाराणसीके बारेमें और मैं गंगाके किनारेकी सड़कसे सीधा जा रहा था, रास्तेमें लोगोंसे पूछकर कि विश्वनाथमन्दिर किस दिशामें है? एक जगह कुछ पुलिसवाले बैठे थे, उन्होंने दिशा-निर्देश दिया, हम सब लोग उधर चल दिये, लेकिन मुझे सन्देह हुआ कि हम विश्वनाथमन्दिरसे दूर जा रहे हैं। हम सब थके थे, कोई दुकान नहीं खुली थी, कुछ देर चलनेके बाद पीछे आ रहे होमगार्डके एक जवानने इशाराकर रुकनेको कहा और कहा कि मैं आपके पीछे काफी देरसे हूँ और ऐसा लगता है कि आप लोग रास्ता भटक गये हैं तो मैंने उसे अपनी दुविधा बतायी। वह तुरंत बोला कि आप लोग उलटे रास्ते जा रहे हैं; आइये, मैं आपका मार्गदर्शन करता हूँ। उस समय दोपहरके ३-४ बजेका समय था। जवानने कहा कि आप मेरे पीछे आइये; बातों-बातोंमें मैंने बताया कि हम लोग शामकी मीटरगेज रेलसे इलाहाबाद जाना चाहते हैं। जवानने हम सब लोगोंको जल्दी चलनेको कहा—अब हालत यह थी कि आगे जवान, मैं और मेरा भाई; लेकिन महिलाएँ बहुत पीछे रह जाती थीं, जवान हर पाँच मिनट चलनेके बाद खड़ा हो जाता था कि सब लोग साथ हो जायँ।

हम लोग विश्वनाथमन्दिरके परिसरमें पहुँचे और सारा सामान रख दिया। अब यह शंका हुई कि सारा सामान कौन देखेगा?

लगता है कि जवानको हमारी चिन्ताका आभास हो गया। उसने कहा कि आपका सामान सुरक्षित रहेगा; जाइये, भगवान् विश्वनाथका दर्शन कर आइये। हमने उससे पूछा कि क्या आप दर्शन नहीं करोगे? उसका जवाब था कि मेरा क्या, यह तो मेरा घर है।

हम सब लोग मन्दिरमें दर्शन करने गये। इस अवसरपर पवित्र शिवलिंगके पास सिर्फ हमारा परिवार था और कोई नहीं था। एक पुरोहितजीने बहुत अच्छी तरहसे पूजा करायी, हम सब लोग अत्यधिक रोमांचित हुए और पूजा करके बाहर आये, तुरंत ही जवानने हम सबसे जल्दी चलनेको कहा—हम लोग बाहर आये और गोदौलिया पहुँचे, वहाँपर कुछ भीड़ थी और बहुत उत्तेजक वातावरण हो रहा था।

जवानने हम लोगोंसे जल्दी करनेको कहा कि आइये, रिक्शा कर लें। उस भीड़में जहाँ कोई सवारी न थी, पता नहीं कहाँसे तीन रिक्शे आये और जवानने उनसे कहा कि हम लोगोंको स्टेशन ले चलो।

रिक्शापर आगे मैं और जवान बात कर रहे थे। उसने कहा कि आपकी ही तरह मैं भी वर्दीमें देशकी सेवामें हूँ।

स्टेशन पहुँचकर उसने भीड़से तुरंत इलाहाबादका टिकट लाकर दिया और मुझसे आज्ञा माँगी कि उसे मुगलसराय जाना है, मैंने पूछा कैसे जाओगे, जवाब मिला कि मैं चला जाऊँगा।

यहाँपर यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि जवानने मुगलसराय जाते-जाते उलटी दिशामें हम लोगोंका मार्ग-दर्शन किया।

मैंने उसको कुछ पैसे देनेकी कोशिश की कि तुम्हारे बच्चोंके लिये है और एक डिब्बा मिठाई देनेकी पेशकश की, उसने स्वीकार नहीं किया और कहा कि सारे बच्चे उसके हैं और हमारे बच्चोंको आशीर्वाद दिया, मैं घूमकर अपनी पत्नीको बताने लगा और एक मिनटमें जब मैं वापस घूमा तो वह जा चुका था; मैंने उसको देखनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु निराशा हाथ लगी। हम लोग गाड़ीमें बैठे और बच्चोंके सोनेका इन्तजाम किया और रात करीब १० बजे इलाहाबाद पहुँचे।

दिसम्बरके ठण्डवाले महीनेमें हम लोगोंकी यह यात्रा सम्पन्न हुई। अगर किसी कारणवश हम लोगोंको वाराणसी रुकना पड़ता तो पता नहीं क्या होता; क्योंकि हमारा कोई परिचित नहीं था, न ही रातके लिये ऊनी कपड़े थे। यहाँपर हम सब यही सोचकर रोमांचित होते हैं कि स्वयं भगवान् विश्वनाथने यह कार्य सम्पन्न कराया। जैसे मार्गदर्शन और अन्तमें सिर्फ तीन रिक्शोंका प्रकट होना। अगर उस व्यक्तिको मात्र एक होमगार्डका सिपाही मानें तो भी उसकी हम अपरिचितोंके प्रति सहृदयता प्रशंसनीय है—**निर्मलकुमार दुबे**

(२)

'हित अनहित पसु पक्षिउ जाना'

बात शायद सन् १९८७-८८ ई०की है, फरवरीका महीना था, रात्रि पालीकी ड्यूटी करके मैं ऋषिकेशसे हरिद्वार स्कूटरसे लौट रहा था। प्रात: लगभग सवा छः बजेका समय रहा होगा। मोतीचूरके जंगलमें सड़कके किनारे एक हरिण, जो मोटा-ताजा था, मृतप्राय पड़ा था। मुझे लगा किसी वाहनसे दुर्घटनाग्रस्त हो गया होगा। मनमें दयाभाव आया, स्कूटर रोककर उसके पास बैठकर देखने लगा कि चोट कहाँ लगी है। चोट कहीं दिखायी नहीं दी, पानी पिलाना चाहता था तो न कहीं बर्तन था, न ही पानी। मैं उसे धीरे-धीरे सहलाने लगा और उसके पैरोंको हलके-हलके हिलाकर देखने लगा, लेकिन उसने आँखें नहीं खोलीं। करीब दस मिनटतक उसके शरीरको सहलाकर फिर स्पन्दनहीन होनेके कारण उसे मृत मानकर चलनेके लिये स्कूटर उठाया ही था कि एक प्राइवेट खाली बस आयी। हरिण देखकर उसमें-से दोनों ड्राइवर-कण्डक्टर उतरकर उसे गाड़ीमें डालनेको झपटे, ज्यों ही हरिणको हाथ लगाया, उसने एकाएक छलाँग लगायी और जंगलमें गायब हो गया। मैं आश्चर्यचकित था, जिसे मैं मृतप्राय समझकर सहलाता रहा, वह अचानक जीवित होकर इस प्रकार गायब हो जायगा! हम तीनों हतप्रभ थे, ड्राइवर बस लेकर चला गया और मैं स्कूटर लेकर घर आ गया। मेरे दस्तानेमें उस समय भी हरिणके बाल लगे थे, जो उसे सहलानेमें दस्तानोंमें आ गये थे। मैंने उसे बच्चोंको दिखाया और सारा किस्सा सुनाया।

वस्तुत: पशु-पक्षी भी मनोभावों और प्रेम तथा स्वार्थकी भाषा पहचानते हैं। हरिणने पशु होते हुए भी अत्यन्त संवेदनशीलताका परिचय दिया। वह मेरे प्रेमभाव एवं संवेदनापूर्ण व्यवहारको समझकर जहाँ निश्चेष्ट बना रहा, वहीं बसके ड्राइवर एवं कण्डक्टरके स्वार्थभावको समझकर तथा अपने जीवनको

संकटमें जानकर तत्काल भाग गया—

'हित अनहित पसु पक्षिउ जाना।'

—**अशोक अग्रवाल**

(३)

छात्रकी ईमानदारी

कोलकाताके कतिपय विद्यालयोंमें परम्परा है कि वार्षिक परीक्षाके पश्चात् एवं परिणाम-घोषणाके पूर्व छात्रोंको अपनी परीक्षित उत्तर-पुस्तिका दिखायी जाती है। छठवीं कक्षाके एक छात्रने एक उत्तर-पुस्तिकामें पाया कि अध्यापिकाजीने कुल योग करनेमें भूल कर दी। फलतः उसे २ अंक अधिक मिल रहे हैं। छात्रने तुरंत अध्यापिकाजीके पास जाकर निवेदन किया—'मैडम! आपने मुझे २ अंक अधिक दे दिये हैं।'

अध्यापिकाजीने पूरी तालिका देखकर मुसकुराते हुए उत्तर दिया—'हाँ, मैंने एक उत्तरमें २ अंक कम दिये थे, उसे ठीक कर देती हूँ।'

शिष्यकी विवेकशीलताको शाश्वत बनाये रखनेके लिये गुरुने परम्परासे हटकर सही निर्णय लिया। 'नौकरीके हित बनी' शिक्षा-प्रणाणीमें आजकल जब नकल करने-करानेकी अनेक घटनाएँ प्रिंट एवं डिजिटल मीडियामें आती रहती हैं, तो ऐसेमें इस प्रकारकी घटना एक आदर्श प्रस्तुत करती है।

—**अरुण चूड़ीवाल**

(४)

रद्दीवालेकी ईमानदारी

कल्लू रद्दीवाला रिक्शाट्राली लिये हमारे मोहल्लेमें पुराने अखबार, पुस्तकें तथा कबाड़का सामान खरीदने आता है। हमारे यहाँ जब पुराने अखबार दो-चार महीनेके इकट्ठे हो जाते हैं तो बेच देते हैं। कल्लू अपने तराजूपर तोलकर जितने रुपये किलोका भाव तय होता है, उसके अनुसार पैसे दे देता है।

एक बार पुराने अखबार बेचते समय भाव तय करनेके सिलसिलेमें हमने उससे पूछा कि ट्रालीपर जो अखबारोंकी गड्डी रखी है, वह किस भाव खरीदकर ला रहे हो? उसने बताया कि यह अखबारोंकी गड्डी वह मुफ्तमें ला रहा है; क्योंकि जिनके यहाँसे ये अखबार लिये हैं, वे लोग हमेशा ही उसे पुराने अखबार बिना पैसा लिये ही दे देते हैं। जब हमने इस विचित्र बातका कारण पूछा तो उसने एक पुरानी घटना सुनायी।

कई माह पूर्व कल्लूने उस घरसे एक बार पुराने अखबारोंकी रद्दी ली और तोलके हिसाबसे पैसे दे दिये। शामको फेरीसे लौटकर जब थोकवाली दुकानपर सब रद्दी और कबाड़ आदि तुलवाया तो वहाँ अखबारोंकी गड्डीमें एक अच्छी भारी चाँदीकी कमरपेटी रखी हुई मिली। कल्लूकी और थोकवालेकी दोनोंकी नजर उसपर पड़ी। थोक व्यापारीने कहा कि तुम तो इसे अखबारोंके साथ तुलवाकर मेरेसे पैसे ले चुके हो, अतः यह मैं तुम्हें वापस नहीं करूँगा। कल्लूने कहा, मैंने तुम्हें अखबार बेचे हैं और उसीके भावसे तुमने पैसे दिये हैं। यदि तुम यह चाँदीकी कमरपेटी भी रखोगे तो उसके हिसाबसे उसका मूल्य दो, नहीं तो इसे मुझे वापस करो।

काफी कहा-सुनीके पश्चात् थोक व्यापारीने उसे वापस कर दिया। रद्दीवालेको याद था कि अखबार उसने किस मकानसे लिये थे। अगले दिन उसने जब उस घरवालोंको वह कमरपेटी ले जाकर दिखायी तो वे तुरंत पहचान गये। उन्होंने पूछा, यह तुम्हारे पास कैसे आ गयी?

रद्दीवालेने उनसे कलकी सारी घटना बतायी। कुछ समय पूर्व उन्होंने उस कमरपेटीको पुराने अखबारोंके बीचमें रख दिया था, शायद चोरी आदिसे सुरक्षाकी दृष्टिसे। इसके पश्चात् वे स्वयं भी इस बारेमें भूल गये।

रद्दीवालेको उन्होंने खुशीसे कुछ रुपये भेंटस्वरूप देना चाहा तो उसने लेनेसे मना कर दिया। फिर उन्होंने कहा कि अबसे तुम हमेशा हमारे यहाँसे रद्दी ले जाया करो, लेकिन हम इसके लिये कभी तुमसे पैसे नहीं लेंगे।

इस घटनाको सुनकर ऐसा लगा कि आज भी कई लोगोंमें ईमानदारी बची हुई है।—**कैलाश पंकज श्रीवास्तव**

मनन करने योग्य

कौटुम्बिक कलहसे हानि

किसी समय एक चिड़ीमारने चिड़ियोंको फँसानेके लिये पृथ्वीपर एक जाल फैलाया। उस जालमें दो ऐसे पक्षी फँस गये, जो सदा साथ-साथ उड़ने और विचरनेवाले थे। वे दोनों पक्षी उस समय उस जालको लेकर आकाशमें उड़ चले। चिड़ीमार उन दोनोंको आकाशमें उड़ते देखकर भी खिन्न या हताश नहीं हुआ। वे जिधर-जिधर गये, उधर-उधर ही वह उनके पीछे दौड़ता रहा।

उन दिनों उस वनमें कोई मुनि रहते थे, जो उस समय संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके आश्रममें ही बैठे हुए थे। उन्होंने पक्षियोंको पकड़नेके लिये उनका पीछा करते हुए उस व्याधको देखा। उन आकाशचारी पक्षियोंके पीछे-पीछे भूमिपर पैदल दौड़नेवाले उस व्याधसे मुनिने प्रश्न किया—'अरे! व्याध! मुझे यह बात बड़ी विचित्र और आश्चर्यजनक जान पड़ती है कि तू आकाशमें उड़ते हुए उन दोनों पक्षियोंके पीछे पृथ्वीपर दौड़ रहा है!'

व्याध बोला—'मुने! ये दोनों पक्षी आपसमें मिल गये हैं, अत: मेरे एकमात्र जालको लिये जा रहे हैं। अब ये जहाँ-कहीं एक-दूसरेसे झगड़ेंगे, वहीं मेरे वशमें आ जायँगे।'

तदनन्तर कुछ ही देरमें कालके वशीभूत हुए वे दोनों दुर्बुद्धि पक्षी आपसमें झगड़ने लगे और लड़ते-लड़ते पृथ्वीपर गिर पड़े। जब मौतके फंदेमें फँसे हुए वे पक्षी अत्यन्त कुपित होकर एक-दूसरेसे लड़ रहे थे, उसी समय व्याधने चुपचाप उनके पास जाकर उन दोनोंको पकड़ लिया।

इस प्रकार जो कुटुम्बीजन धन-सम्पत्तिके लिये आपसमें कलह करते हैं, वे युद्ध करके उन्हीं दोनों पक्षियोंकी भाँति शत्रुओंके वशमें पड़ जाते हैं।*

अत: साथ बैठकर भोजना करना, आपसमें प्रेमसे वार्तालाप करना, एक-दूसरेके सुख-दु:खको पूछना और सदा मिलते-जुलते रहना—ये ही भाई-बन्धुओंके काम हैं, परस्पर विरोध करना कदापि उचित नहीं है।

जो शुद्ध हृदयवाले मनुष्य समय-समयपर बड़े-बूढ़ोंकी सेवा एवं संग करते हैं, वे सिंहसे सुरक्षित वनके समान दूसरोंके लिये दुर्धर्ष हो जाते हैं। जो धनको पाकर भी सदा दीनोंके समान तृष्णासे पीड़ित रहते हैं, वे अपनी सम्पत्ति शत्रुओंको दे डालते हैं।

यह प्रसंग सुनाकर महामन्त्री विदुरने राजा धृतराष्ट्रसे कहा—हे भरतकुलभूषण महाराज! जैसे जलते हुए काष्ठ अलग-अलग कर दिये जानेपर जल नहीं पाते, केवल धुआँ देते हैं और परस्पर मिल जानेपर प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार कुटुम्बीजन आपसी फूटके कारण अलग-अलग रहनेपर अशक्त हो जाते हैं तथा परस्पर संगठित होनेपर बलवान् एवं तेजस्वी होते हैं। अत: परस्पर कौटुम्बिक कलहसे हानि ही होती है। **[महाभारत]**

* एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्। तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात्॥ (महा०, उद्योगपर्व ६४। १०)

महामारीसे मुक्त होनेका सटीक उपाय

आज पूरे विश्वमें महामारीका प्रकोप व्याप्त है। इस त्रासदीसे सभी त्रस्त हैं। यह त्रासदी एक प्रकारसे अभूतपूर्व है, जो न तो पहले देखी गयी और न सुनी गयी। इसके साथ ही प्राकृतिक आपदाएँ भी समय-समयपर आती रहती हैं—बाढ़, भूकम्प, भूस्खलन, आँधी, तूफान तथा दुर्घटनाएँ जब-तब होती रहती हैं। संसारके सभी देश इनसे बचनेका उपाय खोज रहे हैं। नयी-नयी बीमारियाँ तथा असाध्य रोगोंका आक्रमण जनमानसमें पूरी तरह व्याप्त हो रहा है। विपरीत परिस्थितियाँ व्यष्टि अर्थात् व्यक्तिगत रूपमें तथा समष्टि अर्थात् सामूहिक रूपमें—दोनों प्रकारसे आती हैं और इनके निवारणके लिये सभी प्रयास कर रहे हैं। 'कोरोना' जैसे असाध्य रोगकी कोई सटीक दवा अभीतक उपलब्ध नहीं है। इसके अन्वेषणमें अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, आस्ट्रेलिया आदि कई बड़े-बड़े देशोंके वैज्ञानिक लगे हैं और पूरी तरह प्रयासरत हैं, परंतु यह सारे प्रयास भौतिक प्रयास हैं, इसके अतिरिक्त इनके समक्ष कोई दूसरा विकल्प भी नहीं है।

भारतीय संस्कृतिकी एक विशेषता है कि यहाँ किसी भी समस्याके समाधानके तीन विकल्प हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। जब कोई व्यक्ति अस्वस्थ होता है अथवा किसी असाध्य रोगसे ग्रसित होता है तो उसके निवारणके लिये वह जो प्रयास करता है, वह उसका आधिभौतिक प्रयास होता है, परंतु कभी-कभी जब वह भौतिक प्रयासकर थक जाता है और निराश होने लगता है तो उसे आधिदैविक और आध्यात्मिक प्रयासके द्वारा सफलता प्राप्त हो जाती है। यह सफलता भी प्रकटरूपमें यद्यपि भौतिक प्रयासके माध्यमसे ही प्राप्त होती है, जबकि आधिदैविक और आध्यात्मिक प्रयत्न अपनी आस्था और विश्वासपर आधारित हैं। जब कभी देश, समाज और राष्ट्रपर विपत्ति आती है तो उसके निवारणके लिये भारतमें आधिदैविक उपायोंके रूपमें अनुष्ठान, यज्ञ-यागादि भी कराये जाते हैं और उनके परिणाम भी अनुकूल होते हैं। परंतु यह प्रक्रिया केवल भारतीय दर्शन और शास्त्रोंपर आधारित है। विदेशोंमें अथवा पाश्चात्य संस्कृतिमें इस प्रकारकी कोई व्यवस्था नहीं है। इसीलिये उनके सामने भौतिक उपायसे अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

वर्तमान समयमें अपने देशवासियोंके लिये यह सौभाग्यकी बात है कि हमारे प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्रजी मोदी एक आस्थावान् व्यक्ति हैं, जिनका अध्यात्ममें पूर्ण विश्वास है, इसके कारण इनके द्वारा देशके कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सके हैं। आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुए बिना दुरूह कार्य इतनी सरलतासे सम्पन्न नहीं हो सकते।

इस समय 'कोविड-१९' (कोरोना) महामारीका असर कम होता नहीं दिख रहा है, इसके साथ ही कोरोना वायरस अपना रूप भी बदलता है। इसे रोकनेके लिये कई देश इसका टीका (वैक्सीन) बनानेका प्रयास भी कर रहे हैं। भारत भी इस कार्यमें संलग्न है। यह टीका बन भी गया तो यह कितना उपयोगी होगा, इसकी अभी कोई गारंटी नहीं है और इसका बनना संदेहास्पद भी लग रहा है। वास्तवमें कोरोना एक वैश्विक आपदा है, जो पूरे देशको प्रभावित करती है, अत: इसके निवारणके लिये भौतिक उपायके साथ-साथ राष्ट्रीय स्तरपर आध्यात्मिक उपाय भी करनेकी आवश्यकता है, जिससे यह विपत्ति पूरी तरह समाप्त हो सके। इस वैश्विक आपदाकी समाप्तिके लिये आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करनेका एक महत्त्वपूर्ण उपाय है, जिसे पूर्ण आस्था एवं विश्वासके साथ राष्ट्रीय स्तरपर प्रयुक्त किया जाय तो निश्चितरूपमें

सम्पूर्ण जनमानस इस आपदासे मुक्त हो सकेगा।

पिछले दिनों भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमिपर मन्दिरके निर्माणका शुभारम्भ और उसकी पूजा बड़े समारोहके साथ अपने प्रधानमन्त्रीजीद्वारा सम्पन्न हुई। भगवान् राम और भगवान् कृष्ण हम सबके इष्ट हैं अर्थात् हमारे आराध्य हैं और इनकी आराध्या भगवती गोमाता हैं। भगवान् रामका मनुष्यरूपमें अवतार गऊकी रक्षाके लिये ही हुआ—***'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार'*** भगवान् कृष्ण भी गोसेवाके लिये ही 'गोपालशिरोमणि'के रूपमें अवतरित हुए। अपने शास्त्र तो कहते हैं कि गायमें सम्पूर्ण देवी-देवताओंका निवास है। गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी आराधना सम्पन्न हो जाती है। गोसेवासे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष—चारों पदार्थ सिद्ध होते हैं। हमारे कर्मानुष्ठान, यज्ञ-यागादि तथा कोई भी धार्मिक कृत्य गोमाताके बिना सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। ये तो गोसेवाका पारमार्थिक लाभ है। इसके अतिरिक्त एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुभवकी बात है कि गोरक्षा एवं गोसेवाके अनुष्ठानसे कोई भी लौकिक अथवा भौतिक कामनाकी पूर्ति निश्चित रूपसे होती है। इसमें किसी प्रकारका संदेह अथवा शंका नहीं की जा सकती।

अत: कोरोना-जैसी आपदा और महामारीसे मुक्त होनेके लिये आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करनेकी दृष्टिसे राष्ट्रीय स्तरपर गोरक्षाका संकल्प होना चाहिये। गोरक्षाके लिये सबसे पहला काम है कि देशमें गोहत्या बन्द की जाय। स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद पूर्णरूपसे गोहत्याबन्दीके लिये देशमें बड़े-बड़े आन्दोलन और सत्याग्रह हुए। अनशन और उपवास किये गये, देशके सन्त-महात्मा, साधु-संन्यासी और सद्‌गृहस्थोंने स्वयंको गिरफ्तार कराकर भारतकी जेलोंको भरा। कई महापुरुषोंने इस जघन्य कार्यको रोकनेके लिये अपना बलिदान भी दिया, फिर भी देशमें अबतक पूर्णरूपसे गोहत्या बन्द नहीं हुई। भारतभूमिके किसी भी कोनेमें यदि गोरक्त गिरता है तो देशवासियोंके लिये यह अत्यन्त लज्जाकी बात है। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णकी इस पवित्र धरापर, जहाँ बुद्ध और गाँधी-जैसे सन्तोंने सत्य और अहिंसाका दीप जलाया, वहाँ जबतक गोमाताके रक्तकी एक बूँद भी गिरती रहेगी, तबतक हम इस महान पापसे मुक्त नहीं हो सकते तथा देशकी समस्याओंका स्थायी समाधान प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसीलिये सन्त-महात्मा और महापुरुष प्रारम्भसे ही इस काले कारनामेका पुरजोर विरोध करते आ रहे हैं।

अत: केन्द्रीय सरकारद्वारा गोवंशहत्याबन्दीका एक मजबूत कानून बनाया जाना चाहिये, जिससे देशके सम्पूर्ण भागोंमें गोहत्या पूर्णत: बन्द हो जाय। साथ ही भारत सरकारको अन्य देशोंके साथ गोमांसका निर्यात और व्यापार अविलम्ब बन्द कर देना चाहिये। यदि इसके लिये संविधानमें संशोधन करनेकी आवश्यकता हो तो उसे भी यथाशीघ्र कर लेना उचित होगा। इसके साथ ही गोसंवर्द्धनकी दृष्टिसे और गोरक्षाको प्रभावी बनानेके लिये केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें एक पृथक् मन्त्रालयका गठनकर योजनाबद्ध तरीकेसे गायके लिये चारागाह, चिकित्सालय आदिकी व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिये तथा निजी क्षेत्रमें इन कार्योंको करनेवाले लोगोंको प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिये।

गोरक्षाका यह महान् कार्य सरकार और जनता दोनोंके सहयोगसे ही होना सम्भव है। यह एक ऐसा अनुष्ठान है, जिसे भारत सरकार एवं जनता-जनार्दनके द्वारा यदि पूरी आस्था और विश्वासके साथ सम्पन्न कर लिया गया तो महामारीसे मुक्त होनेके लिये राष्ट्रको आध्यात्मिक शक्ति पूर्णरूपसे प्राप्त हो सकेगी, साथ ही इस कोरोना महामारीसे मुक्त होनेके लिये किये गये सभी प्रयास पूर्णरूपसे सफल होंगे।

—राधेश्याम खेमका

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

(शारदीय नवरात्र १७ अक्टूबर शनिवारसे प्रारम्भ होगा)

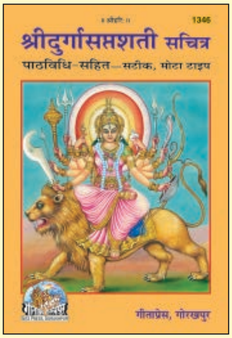

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप

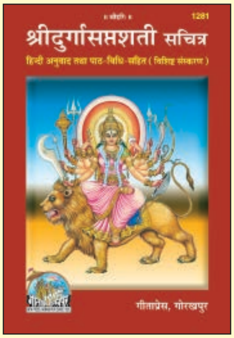

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2236	**सरल दुर्गासप्तशती-मूल** (दो रंगोंमें)	३५
1567	**मूल,** मोटा टाइप (बेड़िआ)	५०
876	**मूल,** गुटका	१५
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	४०
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	६०
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु भी)	४०
489	**सानुवाद,** सजिल्द, गुजराती भी	५०
866	**केवल हिन्दी**	२५
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५५

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—[सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित] (कोड 1897-1898) दो खण्डोंमें—इस महापुराणको (मूल श्लोक भाषा-टीकासहित)-दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। इसके प्रथम खण्डमें १ से ६ स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें ७ से १२ स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ५००, **संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत [मोटा टाइप] (कोड 1133) ग्रन्थाकार**—मूल्य ₹ ३००, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी उपलब्ध।

महाभागवत [देवीपुराण] (कोड 1610) हिन्दी-अनुवादसहित—इस पुराणमें मुख्यरूपसे भगवतीके माहात्म्य एवं लीला-चरित्रका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल प्रकृतिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती और तुलसीरूपमें की गयी विचित्र लीलाओंके रोचक आख्यान हैं। मूल्य ₹ १३०

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹ ४०

शक्तिपीठदर्शन (कोड 2003)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹२०

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	७५०	82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	१५०
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	६००			
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३६०	1617	,, मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	१६०
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	३००	83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१५०
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	८५
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	२४०	85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	६०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१५०	1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	७०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	३००	1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगमें	३०

प्र० ति० 20-07-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

पुरुषोत्तम मासमें स्वाध्याय योग्य ग्रन्थ

पुरुषोत्तम मास १८ सितम्बर शुक्रवारसे प्रारम्भ होगा

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र [मोटा टाइप] (कोड 1468) विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹३००, सामान्य संस्करण (**कोड 789**) मूल्य ₹२५०, गुजराती (**कोड 1286**) मूल्य ₹२५०, तेलुगु (**कोड 975**) मूल्य ₹२००, बँगला (**कोड 1937**) मूल्य ₹१६०, कन्नड़ (**कोड 1926**) मूल्य ₹२००, तमिल (**कोड 2043**) मूल्य ₹३००।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2223	**श्रीशिवमहापुराण**-सटीक I	३२५	586	**शिवोपासनाङ्क**	१५०	1599	**श्रीशिवसहस्र**...नामावलि...	१०
2224	**श्रीशिवमहापुराण**-सटीक II	३२५	1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**-सानुवाद	४०	1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद	३५
2020	**शिवमहापुराण**-मूलमात्रम्	२७५	1954	**शिव-स्मरण**	१०	2155	**द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग**	४०
279	**स्कन्दपुराण**	४२५	1156	**एकादश रुद्र (शिव)**-चित्रकथा	५०	2021	**पुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रम्** (नामावलिसहितम्)	८
1985	**लिङ्गमहापुराण**-सटीक	२५०	1367	**श्रीसत्यनारायणव्रतकथा**	१५			
635	**शिवाङ्क**	२००	563	**शिवमहिम्नःस्तोत्र**	५	2261	**शिवसहस्रनामस्तोत्र**—हिन्दी अनुवाद सहित	८
1135	**भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क**	१६०	228	**शिवचालीसा**-पॉकेट साइज	४	2127	**शिव-आराधना**—पॉकेट साइज (बेड़िआ)	८

जगद्गुरु आद्यश्रीशंकराचार्यकृत पुस्तकें

गीता-शाङ्करभाष्य [सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार] (कोड 10)—इसमें गीताके मूल श्लोकोंके साथ शाङ्करभाष्य तथा सरल भाषामें उसका अनुवाद दिया गया है। गूढ़ भावोंको समझनेके लिये टिप्पणी तथा अन्तमें श्लोकोंके पदोंकी अकारादिक्रमसे सूची भी दी गयी है। मूल्य ₹१५०

श्रीविष्णुसहस्रनाम—शाङ्करभाष्य (कोड 819)—इस पुस्तकमें विष्णुसहस्रनामका भगवान् शङ्कराचार्यकृत भाष्य तथा उसका हिन्दी-अनुवाद दिया गया है। मूल्य ₹४०

अपरोक्षानुभूति (कोड 203)—भगवान् शङ्कराचार्यके द्वारा प्रणीत इस पुस्तकमें तत्त्वज्ञानके बहुमूल्य उपदेशोंके रूपमें आत्मसाक्षात्कारका महामन्त्र है। सरल अनुवादके साथ उपलब्ध। मूल्य ₹५

प्रश्नोत्तरी [पॉकेट साइज] (कोड 668)—भगवान् शंकराचार्यके द्वारा प्रणीत यह पुस्तक प्रश्नोत्तर शैलीमें वेदान्तके तत्त्वज्ञानकी सुन्दर परिचायिका है। मूल्य ₹४

विवेक-चूडामणि [सानुवाद] (कोड 133)—भगवान् शंकराचार्यके द्वारा विरचित ग्रन्थोंमें विवेक-चूडामणिका विशेष स्थान है। इसमें ब्रह्मनिष्ठका महत्त्व, ज्ञानोपलब्धिका उपाय, प्रश्न-निरूपण, आत्मज्ञानका महत्त्व, पंचप्राण, आत्म-निरूपण, मुक्ति कैसे होगी ?, आत्मज्ञानका फल आदि तत्त्वज्ञानके विभिन्न विषयोंका अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया गया है। मूल्य ₹२५ बँगला (**कोड 1460**) और तेलुगु (**कोड 910**) भी उपलब्ध।

☛ booksales@gitapress.org
थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
☛ gitapress.org
सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
book.gitapress.org
gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।